भारतीय परम्परा में उत्सव

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री सुशील कुमार ताम्बी
प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
A/3 आर्य नगर
एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
मुरलीपुरा, जयपुर 302039
फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773

ज्ञान गंगा प्रकाशन
पाथेय भवन,
बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
दूरभाष : 0141-2371563

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
नई दिल्ली 110055
फोन : 011-23675667

हिन्दू राइटर्स फोरम
129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027

जागृति प्रकाशन
श्री कृष्णानन्द सागर
एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-04-7

प्रथम संस्करण : 2014 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : सत्तर रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

BHARATIYA PARAMPARA ME UTSAV (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 70

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

सम्पादकीय

भारतीय समाज उत्सवप्रिय समाज है। उत्सव की प्रियता और अधिकता भारत की समृद्धि को उसके ऊँचे सांस्कृतिक स्तर को सिद्ध करती है। भारत सचमुच रत्नगर्भा शस्य श्यामला देश है जो थोड़े से प्रयास से ही हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। जिस देश के वासियों का सारा समय दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाता है उनके पास उत्सव पालन के लिए समय कहाँ? धन कहाँ? हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा होने के कारण हमारे उत्सव मन को संस्कारित करने वाले, मन को ऊर्ध्वदिशा देने वाले, सत्य के प्रति निष्ठा जगाने वाले, देव विग्रह में, परब्रह्म परमात्मा में, आत्मा में निमज्जित करने वाले होते हैं। पर जिन देशों का सांस्कृतिक स्तर निम्न होता है उनके उत्सव मन को कुपथ-गामी, अधोगामी, विषयी बनाने वाले होते हैं। जैसे रोम गुलामों की सबसे बड़ी मण्डी थी। जहाँ गुलामों को नग्न-अर्धनग्न रखा जाता था, उन्हें घर के दरवाजे या गली-कूचों में सोना पड़ता था। उनके जीवन में यदि कोई अपराध बन जाता था तो उनको जीवित समुद्र में मगरमच्छ के आगे डाल दिया जाता था, और निरपराध होने पर अपने मालिकों के मनोरंजनार्थ हिंस्र पशुओं से लड़ना पड़ता था। उनके हार जाने पर उनको मार कर उनके शव को रथ में बांध कर घसीटा जाता था। यही स्थिति इस्लाम-ईसाइयत आदि की है। रमजान के माह का पालन करने के पश्चात् काफिरों के घात का आदेश देते हैं उनके शास्त्र। पर हमारे देश का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा होने के कारण हमारे मन में सत्य के प्रति अविचल निष्ठा को जगाती है, हमारे मन को आध्यात्मिक बनाने का, प्रभुमय बनाने का प्रयास करती है, हमारे मन को सात्विक आनन्द से भर देती है। अतः भारतीय उत्सव हमारे राष्ट्रजीवन का प्राण है जो जन-जीवन में पुनः-पुनः प्राण संचार करता है और हमारे पूर्वजों की पुण्य परम्परा से, उसके कर्तृत्व-व्यक्तित्व एवं आदर्शों से जीवन-मूल्यों से जोड़े रखता है।

इसमें सारे लेख डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के दूसरे, तीसरे और चौथे खण्ड से संकलित है। इसमें दो नये लेख एक डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी और एक मेरा शामिल किया है। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद तथा सांखला प्रिंटर्स के प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग से प्रकाशित हो रहा है।

शिवाकांक्षी

स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक और संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

नववर्ष मंगलमय हो

सारा ब्रह्माण्ड काल के हाथ में एक खिलौना है। हरक्लाइटस, बुद्ध और बर्गसन जैसे विद्वानों का मत है कि हम एक ही वस्तु को दो बार नहीं छू सकते या कोई शब्द दुबारा बोल नहीं सकते अथवा किसी क्षण में दुबारा जी नहीं सकते। इसका अभिप्राय है कि समय की गति इतनी तीव्र है कि कोई भी क्षण दुबारा नहीं आता। इसलिए हर क्षण एक नया क्षण होता है, हर दिन एक नया दिन और हर वर्ष एक नववर्ष होता है। हर परिवर्तन क्रिया की तरह समय के परिवर्तन के भी अपने अच्छे और बुरे पक्ष हैं। हम गुजरे हुए समय को उसका अन्त मानते हैं और आने वाले हर क्षण का त्योहार की तरह स्वागत करते हैं। भूतकाल को भुला देना हमें कुछ भारी-सा लगता है किन्तु इससे भविष्य का स्वागत करने के लिए हमें एक नई चेतना, सौन्दर्य और उल्लास मिलता है। अंग्रेजी के महान् लेखक 'लॉर्ड टेनिसन्' का मानना है कि वर्ष के अन्त में जब मन्दिरों और गिरजाघरों में घंटियाँ बजती हैं तो इन घंटियों का गुंजन नववर्ष का स्वागत भी करता है। समय की परिवर्तनशीलता के विषय में इस लेखक का कहना है कि भूतकाल जब पीछे हट जाता है उसका स्थान लेने के लिए वर्तमान अपने आप आ जाता है। भगवान् ने प्रकृति का यह नियम इसलिए बनाया है कि जीवन में सदैव नवीनता, ताजगी और उल्लास भरा रहे। प्रसिद्ध कवि 'शैले' अपने काव्य में बहुत सुन्दर ढंग से कहते हैं, 'यदि शीतकाल आ गया है तो क्या वसंत ऋतु बहुत दूर होंगी!'

पिछला वर्ष जाते-जाते ठण्डक और कार्य क्षीणता, तमस आदि क्रिसमस के हिमपात के अन्दर दब जाते हैं और दूर क्षितिज पर एक नई उमंग, आशा और प्रेम का संदेश लिए सुखदायक सूर्य का उदय होता है। हजारों वर्षों से मानव जाति की असंख्य पीढ़ियों ने नववर्ष के सूर्योदय का नव-जीवन, आशा, शौर्य एवं हर्ष के रूप में स्वागत किया है।

मानव जीवन में एक अजीब तमस या निष्क्रियता आ जाती है, जिससे वह वर्तमान से कुछ अधिक मोह करने लगता है। किन्तु सभी साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक उन्नति रुक जायेगी यदि मानव केवल वर्तमान से चिपका रहे। नवीनता की इच्छा ही मनुष्य को प्रगति के मार्ग पर ले जाती है। करोड़ों दिन और रातें भूतकाल

के गर्त में समा चुकी हैं, किन्तु नववर्ष का संदेश हम सब के लिए एक नई आशा की किरण लेकर आता है। हर नया वर्ष हममें एक नई आशा और मनोवैज्ञानिक शक्ति का संचरण करता है।

वर्ष का पहला दिवस कई और प्रकार से भी महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री प्रिंसिपल बाधवाराम ने समझाया कि वर्ष के पहले महीने का नाम जनवरी एक लैटिन देवता 'जैनूस' के नाम पर पड़ा है। रोमन साहित्य के अनुसार यह देवता 'जैनूस' स्वर्ग के मुख्य द्वारपाल हैं। इस देवता के दो चेहरे हैं। एक सामने भविष्य को देखता है जबकि दूसरा भूतकाल की ओर देखता है। वर्तमान काल में कई लोग धर्म और प्राचीन संस्कृति को अन्धविश्वास मानकर इसका उपहास करते हैं। किन्तु जैसे भूतकाल में धर्म और संस्कृति ने मानवता का मानसिक भरण-पोषण किया वैसे ही ये शक्तियाँ भविष्य में भी मानवता को सक्षम और सबल बनाएँगी। जैनूस का स्वर्ग का द्वारपाल होना एक गहरा अर्थ रखता है। जैसे कोई मुख्यद्वार या गेट से भीतर और बाहर दोनों ओर देखता है, वैसे ही जैनूस का एक चेहरा भविष्य की ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखता है तो पीछे का चेहरा भूतकाल की ओर ललचाई नजरों से देखता है। इसी प्रकार नववर्ष का प्रभात, जनवरी का प्रथम दिन आने वाले नये वर्ष को आशापूर्ण नजरों से देखता है, साथ ही गुजरे हुए वर्ष का सिंहावलोकन भी करता है।

नववर्ष के दिन हम भूतकाल का मूल्यांकन एवं भविष्य के लिये मानसिक रूपरेखा बनाते हैं। हमें पिछले वर्ष के कार्यकलापों का निष्पक्ष आकलन करना चाहिये ताकि पहले की गलतियों की नववर्ष में पुनरावृत्ति न हो। हमें अपनी मार्ग दिशा सोच-समझ कर स्थिर करनी है ताकि नववर्ष में जीवन यात्रा, सुखद, सुलभ और हितकारी हो। चैलसा के महान संत कार्लायल ने जो कहा था उसी भाव को भगवद्गीता में कर्मयोग के माध्यम से दर्शाया गया है—कर्म ही धर्म है। आइये, हम सब नववर्ष के सूर्योदय के समक्ष, सुसंस्कृति, सभ्य, कर्तव्यपरायण जीवन का व्रत लें ताकि सकल विश्व में ज्ञान का प्रकाश एवं प्रेम, करुणा और सेवा की सुगन्ध व्याप्त हो सके।

हिन्दू धर्म हमारा जीवनप्राण है। जन्म से मरण तक, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, इहलोक से परलोक तक हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण, हमारा सम्पूर्ण क्रिया-कलाप सनातन हिन्दू धर्म से नियोजित है।

—प्रो. ओबराय

महान् 'संक्रमण' का सांस्कृतिक पर्व : मकर संक्रांति

इस धरणी पर जन्म पाकर जिस महान् जाति ने अपने जीवन के उषाकाल में ही स्वदेश, संस्कृति, भाषा, उत्सव, त्योहार की परिकल्पना की, सृष्टि द्वारा राष्ट्रीय जीवन की स्रोतस्विनी को प्रवाहित किया, विश्व की उस सनातन जाति की गौरवगाथा इस शस्य-श्यामला भारत भूमि के अणु-अणु में व्याप्त है। आज युगों के पश्चात् भी उसके उत्सवों में एक प्राणदायिनी शक्ति, कर्तव्यपथ पर बढ़ने के लिए सतत संघर्ष की प्रेरणा तथा उद्बोधन एवं नवजागरण का महान संदेश निहित है।

धरती माता का जन्मोत्सव

मकर संक्रांति केवल हिन्दू जाति का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का सर्वप्रथम उत्सव है। भारतीय धर्म-परम्पराओं एवं ज्योतिष गणनाओं के अनुसार मकर संक्रांति दिवस (माघ मास की सौर गणना का प्रथम दिवस) धरती माता के जन्म का पावन जयन्ती उत्सव माना जाता है। पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में प्रायः सभी धर्मों में बड़ी भ्रान्त कल्पनाएं हैं। कुरान शरीफ के अनुसार पृथ्वी सूर्य के जन्म से पहले ही वर्तमान थी। अल्लाताला ने दुनिया की तारीकी (अन्धेरे) को दूर करने के लिए ही चाँद और सूरज बनाए। ईसाई धर्म का पृथ्वी को चपटा मानना तो इतिहास-प्रसिद्ध है। पृथ्वी को गोल कहने वाले प्रसिद्ध नक्षत्र वैज्ञानिक गेलिलियो को आजीवन दारुण यातनाएँ देकर मारने वाले ईसाइयों की धर्मान्धिता पर मानवता अश्रु बहा रही है। इसके विपरीत हमारे यहाँ भूगोल नाम ही पृथ्वी के गोल होने का परिचायक है। मनुस्मृति में केवल पृथ्वी को ही नहीं, वरन् समस्त सृष्टि (ब्रह्माण्ड) को भी अण्डाकार कहा गया है।

मकर संक्रांति धरती माता का जन्मोत्सव माना जाता है। इस दिन धरती सूर्य से पृथक् हुई थी। श्री रघुनाथ दत्त बन्धु ने अपनी पुस्तक 'सनातन धर्म शिक्षक' के चतुर्थ विभाग में पृष्ठ 65 पर त. ब्र. संकेत देकर सम्भवतः सामवेद के तांड्य ब्राह्मण से निम्नलिखित मन्त्र उद्धृत किया है——

तास्मात्तपनाद्वै क्षमोत्क्रम्यमघामार्च्छत् (त. ब्र. 2/1/3)

अर्थात् उस प्रतप्त सूर्य से (तस्मात् तपनात्) पृथक् होकर घूमती हुई (उत्क्रम्य) पृथ्वी (क्षमा) मघा नक्षत्र की ओर आई (मघामाच्छ्र्तत्)। उक्त मंत्र के अनुसार मकर संक्रांति के दिन ही प्रतप्त अग्नि पिंड सूर्य से एक ज्वलन्त स्फुलिंग के समान पृथक् होकर हमारी धरती अस्तित्व में आई। पृथ्वी का सूर्य से उत्पन्न होना आज भूगोल का एक प्रामाणिक तथ्य है। हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों को इस तथ्य का ज्ञान होना एक बहुत बड़े गौरव का विषय है। इस विषय में विद्वानों को और अधिक गवेषणा करके तथ्यों को प्रकाश में लाना चाहिए।

धरती का सूर्य को नमस्कार तथा प्रदक्षिणा

उक्त विद्वान् की व्याख्या के अनुसार सूर्य से पृथक् होने पर धरती ने एक भक्त की भांति अपने जन्मदाता सूर्य के सम्मुख अपना शीश झुका दिया तथा सूर्य की गति से गतिमान हुई वह स्वयं भी घूमती हुई भगवान् अंशुमाली की प्रदक्षिणा करने लगी। आज भूगोल ने पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियाँ तथा उसके अक्ष का 67 अंश के कोण पर झुका होना स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ से आज तक हमारी पृथ्वी सूर्य के चारों ओर दो अरब से अधिक चक्कर लगा चुकी है।

उत्तरायण तथा दक्षिणायन का विभाग

उत्तरी ध्रुव के झुके रहने के कारण 6 मास तक उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य के अधिक समीप रहता है तब उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म का प्रभाव अधिक रहता है। 6 मास तक उत्तरी ध्रुव सूर्य से तनिक दूर हो जाने के कारण उस उत्तरी गोलार्द्ध में शीत प्रधान ऋतु रहती है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु आ जाती है। इस प्रकार धरती के नमस्कार के कारण 6 ऋतुएँ बनती हैं। जब उत्तरी ध्रुव सूर्य के निकट रहता है तो उसे उत्तरायण कहते हैं तथा दक्षिणी ध्रुव के निकट हो जाने के काल को दक्षिणायन कहते हैं।

मकर संक्रांति के मंगलमय पर्व के दिन शीत प्रधान दक्षिणायन समाप्त होकर उत्तरायण आरम्भ होता है। इसका वर्णन स्कन्द पुराण के कुमारिका खण्ड में भी पाया जाता है।

शीत से ठिठुरे हुए जन समाज को नया प्रकाश तथा नई उष्णता मिलती है। शिशिर तथा शीत से म्रियमाण मानव को एक मधु ऋतु के आगमन के सन्देश से नव प्राण मिल जाता है। प्रत्येक अयन को आगे तीन ऋतुओं में विभाजित किया गया है।

उत्तरायण—मकर संक्रांति से आरम्भ—1. माघ व फाल्गुन—शिशिर। 2. चैत्र व वैशाख—बसन्त। 3. ज्येष्ठ व आषाढ़—ग्रीष्म।

दक्षिणायन—रक्षा-बंधन से प्रारम्भ—4. श्रावण व भाद्रपद—वर्षा। 5. आश्विन व कार्तिक—शरद। 6. मार्गशीर्ष व पौष—शीत-हेमन्त।

आजकल के भूगोल शास्त्री केवल चार ऋतुएँ मानते हैं, किन्तु इस प्रकृति के पालने, हमारे देश में 6 ऋतुएँ हुआ करती हैं तथा यहाँ के जन समाज का जीवन उन ऋतुओं से समरस हो चुका है। भूगोलानुसार उत्तरी गोलार्द्ध में प्रकाश तथा उष्णता की अधिकता लगभग 22 दिसम्बर से प्रारम्भ हो जाती है, किन्तु उत्तरी गोलार्द्ध में बसने वाले हम लोग अनुभव कर सकते हैं कि यह तिथि 21 दिसम्बर की अपेक्षा 14 जनवरी (मकर संक्रांति) हो तो अधिक युक्तिसंगत होगा, क्योंकि माघी के पश्चात् ही ऋतु में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, दिन बढ़ते हैं तथा रातें घटनी प्रारम्भ होती हैं तथा सूर्य के प्रकाश में उष्णता भी बढ़नी प्रारम्भ हो जाती है। पृथ्वी और सूर्य की एक कथा से एक महान् संदेश भी मिलता है। सूर्य पिता है पृथ्वी पुत्री। पृथ्वी ने अपने जन्मदाता सूर्य से कहा कि मैं तेरे अनुशासन को सर्वदा मानूंगी। उस समय से लेकर आज तक वह सूर्य के आकर्षण से बन्धी हुई, अपने ही संयत ग्रहपथ पर चलती हुई नियमित रूप से सूर्य की प्रदक्षिणा कर रही है। यदि कभी पृथ्वी अपने इस अनुशासन को त्याग दे तो लवमात्र में खण्ड होकर नष्ट हो जाए। इसी प्रकार से समाज में रहने वाले हम व्यक्ति पृथ्वी के समान हैं, तथा हमारा जन्मदाता समाज सूर्य के समान है। हमारा कर्तव्य है कि हम समाज को अपने से बड़ा मानें, उसे शीश झुकायें, उस की गति धारण करें, उसका अनुशासन स्वीकार करें, उसके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर ही चलें, तथा सब कार्य करते हुए समाज के गिर्द ही घूमते रहें जैसे भगवान् अंशुमाली के गिर्द नवग्रह घूमते रहते हैं। यदि हम कभी समाज का अनुशासन भंग करने का प्रयास करेंगे तो आकाश में प्रतिदिन टूटने वाले असंख्य तारों के समान खण्ड-खण्ड होकर अपना अस्तित्व खो बैठेंगे।

जब पृथ्वी ने अपनी प्रथम परिक्रमा निर्विघ्न समाप्त कर ली तो वैदिक काल में ऋषियों ने पौष मासांत को अयन की समाप्ति का सूचक यज्ञ किया तथा बड़ा आनन्द-मंगल मनाया गया। 'लोड्ड' धातु का अर्थ है आनन्द मनाना। उसी का बिगड़ कर आज का लोढ़ी शब्द बना है। इस दिन द्वि-जाति लोग ग्राम्य तथा अरण्य के धान्यों में मीठा मिलाकर वेद मंत्रों द्वारा बड़ा भारी हवन किया करते थे। धीरे-धीरे वेद मन्त्रों का लोप हो गया तथा यह केवल हर्ष का द्योतक रह गया। इसलिए इस का नाम हर्ष की रात्रि होने से लोहड़ी पड़ गया। आज भी फुल्ले तथा चिड़वे रूपी धान्य, रेवड़ी रूपी मिष्टान्न देखकर मूल प्राचीन यज्ञ का अनुमान किया जा सकता है। इस यज्ञ की ज्वालाओं का सन्देश है—अपने मन के कलुष को, पाप को, तुच्छता को, स्वार्थ को त्याग की अग्नि में भस्मीभूत कर दो तथा अन्तर्बाह्य पवित्र बनो, हृदय में ध्येयाग्नि सदा जलती रहे तथा अरमानों की ज्वाला कभी न बुझने पाये। अपने हृदय में स्वदेश-भक्ति की चिनगारी तथा नेत्रों में माँ के वैभव का स्वप्न ले कर हम भारतमाता का भविष्य निर्माण करें। तभी सच्चा संक्रमण होगा।

6 मास का उत्तरायण तैंतीस कोटि देवताओं का दिन तथा 6 मास का दक्षिणायन देवताओं की रात्रि मानी जाती है। भूगोल में यह भी माना जाता है कि

उत्तरायण के समय उत्तरी ध्रुव पर 6 मास का दिन तथा दक्षिणायन के समय वहाँ पर 6 मास की रात्रि होती है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि हमारे देवता लोग उत्तरी ध्रुव के निवासी होंगे। लोकमान्य तिलक का यह मत कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव के निवासी थे, भी अधिक समीचीन प्रतीत होता है। अस्तु; आज इसका एक सांकेतिक अर्थ भी है। 33 कोटि के देवता वास्तव में 33 कोटि भारतीय जनगण, देवी-देवों के तुल्य ही हैं। आओ, आज देव जागरण के इस पुनीत पर्व पर हम निद्रा में पड़े अपने कोटि-कोटि बन्धुओं को जगायें। आज कोट्यावधि देशवासियों को उद्बुद्ध करें, जागृत करें तथा उनमें नवीन प्राण, नवीन चेतना फूंकें एवं एक नव प्रबुद्ध, नव जागृत भारत का निर्माण करें।

प्राचीनकाल में गुरुकुलों में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों का अध्ययन सत्र तथा अवकाश इत्यादि भी अयनों के अनुसार विभाजित था। प्रथम सत्र (दक्षिणायन) श्रावणी से गीता जयन्ती (5 मास)। शीतावकाश जयन्ती (पौष एकादशी) से मकर संक्रांति से गुरु पूजा (आषाढ़ पूर्णिमा) (5 मास) वर्षावकाश गुरुपूजा से श्रावण (श्रावणी पूर्णिमा) तक (1 मास)।

नए सत्र के प्रारम्भ का सूचक मकर संक्रांति का दिवस हमें अपने जीवन में संक्रमण कर जीवन का नया सत्र प्रारम्भ करने का सन्देश देता है। अपने राष्ट्रीय जीवन में एक नूतन परिवर्तन करने में ही संक्रांति की सार्थकता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को महाभारत का महासमर प्रारम्भ हुआ था। उस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अर्जुन को गीता का ओजस्वी सन्देश सुनाया। इसलिए इस दिन को गीता जयन्ती दिवस कहा जाता है। इसके पश्चात् 18 दिन तक निरन्तर भीषण युद्ध हुआ। गीता जयन्ती के लगभग 1 मास पश्चात् संक्रांति आती है। इन दिनों भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े हुए थे। उन्होंने शरशय्या पर ही लेटे हुए युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों को अमूल्य उपदेश दिया। वे दक्षिणायन में प्राण छोड़ना नहीं चाहते थे, क्योंकि उसमें मरने से मनुष्य चन्द्रलोक में जाता है तथा अपने कर्मों का फल भोगने के पश्चात् पुनः इस पृथ्वी पर जन्म लेता है। जब दक्षिणायन समाप्त होकर मकर संक्रांति के दिन उत्तरायण के सूर्य की स्वर्ण रश्मियाँ नभोमण्डल में अपना नव आलोक बिखेरने लगीं तो उस महामानव ने अपना शरीर छोड़ा। उनका ब्रह्मरंध्र फटा तथा एक दिव्य ज्योति निकल कर आकाश में सूर्य की ज्योति में विलीन हो गई। उस वीरव्रती भीष्म की पावन स्मृति का सूचक मकर संक्रांति का पर्व है। पितामह भीष्म के आदेशानुसार माघी के मंगलमय पर्व पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने राजपद ग्रहण किया। इस दिन भारत में एक विश्वविख्यात महासमर के पश्चात् अधर्म का नाश होकर धर्म का मंगलमय राज्य स्थापित हुआ तथा नभोमंडल में फहराती हुई पताका गुंजार उठी—

सत्यमेव जयते नानृतम्।

क्रिसमस भारतीय मकर संक्रांति का पर्व है

धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन मानवीय इतिहास का एक बड़ा रोचक अध्याय है। विश्व में एशिया ही धर्म की संस्कार भूमि है तथा भारत एशिया का हृदय ही है। अपने पाश्चात्य देशों के प्रवास में मैंने ईसाई जगत् का बहुत निकटता से अवलोकन किया। न्यूयार्क स्टेट युनिवर्सिटी में मैंने एक शोध-पत्र में प्रमाणित किया कि महात्मा ईसा की विचारधारा पर भारतीय दर्शन का सुस्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार फिलेडेलफिया तथा रोम में कई विश्वविद्यालयों, क्लबों तथा गिरजाघरों में मैंने ऐतिहासिक शोध द्वारा स्थापित किया कि ईसा के जन्म दिवस के रूप में प्रचारित क्रिसमस महोत्सव वास्तव में भारत का प्राचीन मकर संक्रांति (सूर्य-पूजा) महोत्सव ही है।

यह एक शुद्ध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक शोध का विषय है, इसमें किसी धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक विद्वेष का कोई प्रश्न नहीं। इसलिए संसार के बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में इन शोध-पत्रों का बुद्धिजीवी लोगों ने स्वागत किया है।

आज संसार के लगभग 70 ईसाई देशों में 25 दिसम्बर के दिन ईसाइयों के जन्मदाता ईसा का जन्म दिवस (क्रिसमस) मनाया जाता है। किन्तु प्रश्न उठता है कि ईसा के जन्म की वास्तविक तिथि क्या हैं?

क्या ईसा दिसम्बर की कड़ाके की सर्दी में पैदा हुए थे? क्या ईसा के जीवनकाल में किसी ने उनके जन्म-दिवस को जाना अथवा माना था? क्या उनके नाम से प्रचारित ईस्वी संवत् के लगभग 400 साल बाद तक भी कभी क्रिसमस का पर्व मनाया गया था? क्या ईसा के जन्म के पूर्व भी 25 दिसम्बर को कोई महापर्व मनाया जाता था? ये सब इतिहास के बहुत बड़े प्रश्नचिह्न हैं? जिनके सम्मुख ईसा-भक्ति (Christianity) से भी बढ़ कर चर्च भक्ति (Churchanity) बहुत अधिक भयभीत है।

ईसा की जन्मतिथि

आज तक विश्व का कोई इतिहासकार महात्मा ईसा की वास्तविक जन्मतिथि नहीं बता सका। इंग्लैण्ड के विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक एवं मनीषी बर्ट्रेंड रसेल लिखते

हैं, 'ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत संदेहास्पद है कि क्या ईसा वास्तव में पैदा भी हुआ था या नहीं? यदि वह हुआ भी हो तो हम उसके वास्तविक जीवन के बारे में कुछ भी नहीं जानते।

(Why I am not a Christian, Bertrand Russel P. 21)

इसी प्रकार इंग्लैण्ड के विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार आरनल्ड जे. टायनबी (Arnold J. Toynbee) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ A Study of History के पृष्ठ 70 पर लिखा है—'इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ईसा ईस्वी संवत् के प्रथम वर्ष में पैदा हुआ था। ईसा के प्रथम शती के प्रथम वर्ष में जन्म की यह मान्यता तो ईस्वी संवत् की छठी शताब्दी तक प्रचलित भी नहीं हुई थी।' इसी प्रकार प्रसिद्ध लेखक एच.जी. वेल्स (H.G. Wells) ने भी ईसा के वास्तविक इतिहास, उसकी वास्तविक जन्मतिथि आदि के विषय में गंभीर संदेह व्यक्त किये हैं।

ईसा के अस्तित्व के बारे में हमारे पास केवल बाइबिल के 4 समाचार हैं—मैथ्यू, आर्क, ल्यूक तथा जॉन द्वारा लिखित समाचार। इनमें कहीं भी ईसा की जन्मतिथि का संकेत नहीं है। इसके विपरीत ट्रुथ सीकर, अमेरिका के संपादक चार्ल्स स्मिथ के अनुसार चौथी शताब्दी तक बाइबिल अपने वर्तमान रूप में नहीं थी। 1647 तक यह विवाद चलता रहा कि बाइबिल के कौन से समाचार प्रामाणिक हैं तथा कौन से अप्रामाणिक। 1647 में वेस्ट मिन्स्टर असेम्बली ने 66 पुस्तकों का अनुमोदन किया। इन पुस्तकों का संग्रह बाइबिल का अधिकृत पाठ माना जाता है और अमेरिका में इसी का बहुत प्रचार है।

अतः बाइबिल के ईसा के जीवन संबंधी चार समाचारों का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत कम हो जाता है। यदि उन्हें प्रमाण मान भी लिया जाए, तो भी बाइबिल के अन्तर्साक्ष्य के अनुसार ईसा का जन्मकाल का वर्णन यह संकेत देता है कि ईसा का जन्म दिसम्बर की कड़ाके की सर्दी में न होकर ग्रीष्म या वसन्त ऋतु में हुआ होगा, जब इजरायल के चरवाहे रात्रि भर जंगल में भेड़ों की रखवाली करते हुए गीत गाते तथा बंसी बजाते रहे होंगे। इसी प्रकार पनहारन कुएं से पानी भरकर ला रही थीं, जब एक अश्वशाला में ईसा के जन्म का वर्णन किया गया है। यह निश्चय ही इजरायल में 25 दिसम्बर को असम्भव है।

ईसा के दो महान शिष्यों पीटर और पाल (जिन्होंने ईसा को प्रत्यक्ष नहीं देखा था) के जीवनकाल में भी ईसा का जन्मोत्सव पर्व क्यों नहीं मनाया गया था। ईसा के बाद तीसरी शती में मिस्र के ईसाइयों ने 6 जनवरी को ईसा दिवस मनाना आरम्भ किया। किन्तु चर्च ने इसे मान्यता नहीं दी। दूसरी शती में तो कई लोग ईसा का जन्म 20 अप्रैल को तथा कुछ तो 20 मई को मनाते थे। 25 दिसम्बर की प्रथा प्रारम्भ होने के बाद भी विवाद चलता रहा।

अमेरिकन विश्वकोश में कहा गया है कि 'अनेक आधारभूत लोगों के मतानुसार चर्च के प्रारम्भिक शतकों में ईसा का जन्म दिन नहीं मनाया जाता था।'

क्रिसमस से पूर्व प्रचलित मकर संक्रांति पर्व

रोम में ईसाइयत को चौथी शती में सर्वप्रथम मान्यता मिली। उससे पूर्व रोम तथा सारे यूरोप में भी मित्र-पूजा (सूर्य पूजा) प्रचलित थी। रोम की राजधानी में एक बहुत बड़ा सूर्य मंदिर था, जिसे आदित्यालय कहा जाता था। उसी आदित्यालय से दितालय, ऐतालय, इतालय तथा इतालिया (ITALIA) शब्द बने। वहाँ प्रतिवर्ष 25 दिसम्बर को सूर्य पूजा महोत्सव प्रचलित था। भौगोलिक दृष्टि से अभी भी 23 या 24 दिसम्बर को वर्ष का सबसे छोटा एवं सबसे ठण्डा दिन होता है। उसके बाद नई उष्णता, नया जीवन, नया प्रकाश लेकर नये सूर्य का उदय उत्तरायण का सबसे बड़ा महोत्सव होता है। सारे यूरोप में 24 दिसम्बर की मध्य रात्रि के बाद 25 दिसम्बर को सूर्य देवता को बाल-रवि के रूप में पूजा जाता था। इसे आलंकारिक शैली में सूर्य का जन्म उत्सव भी कहा जाता था। ईसाई पादरियों को ईसा की जन्मतिथि अज्ञात होने के कारण सबसे प्रथम सन् 336 में रोम में 25 दिसम्बर को मित्र-पूजा के दिन को क्रिसमस के रूप में मनाया। यह रोम के राजा कांस्टेण्टाइन (Constantine Page 306-7) के राज्यकाल में हुआ, जो पहले स्वयं मित्र पूजक था तथा 313 ई. सन् में ईसाई बना और उसने रोम में मित्र-पूजा (सूर्य-पूजा) पर प्रतिबंध लगा दिया।

चैम्बर्स इनसाइक्लोपीडिया के अनुसार 'पांचवीं' शती के मध्य तक यरूशलम में क्रिसमस का पर्व कोई नहीं जानता था। ईसा की जन्मतिथि, मास और वर्ष के बारे में भी कोई नहीं जानता।'

ऐडविन बीवन (Edwin Bevan) ने अपनी पुस्तक (Christianity in the light of modern knowledge P. 103) पर लिखा है, 'इस बात में संदेह नहीं है कि चर्च ने मित्र पूजा (सूर्य पूजा) के धर्म से ही 25 दिसम्बर (सूर्य के जन्मोत्सव के दिन) को ही क्रिसमस का उत्सव नियत करने का विचार किया।'

बाइबिल के अनुसार God ने प्रथम छः दिनों में सारी सृष्टि की, और सातवें दिन विश्राम किया। और उस दिन हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रथम छः दिन कहाँ से गिने? जितने भी कैलंडर हैं सबसे ऊपर (प्रथम में) रविवार लिखा होता है। प्रथम दिन Sunday है और इस क्रम में शुक्रवार छठा दिन होता है शनिवार सातवां दिन। इसलिये शनिवार को चर्च लगते थे सारे इजराइल में और सारे यूरोप में ईसाइयत के प्रवेश के पूर्व। यहूदी लोग आज भी शनिवार को चर्च लगाते हैं। सूर्य पूजा रविवार को होती है। सूर्य-मंदिरों में ईसाई पादरियों ने

छलपूर्वक प्रवेश कर रविवार को ही अपनी प्रार्थना-पूजा प्रारम्भ की। कालान्तर में सूर्य मंदिर नष्ट कर गिरजाघर में परिवर्तित कर दिये गये और सूर्यपूजकों को धर्मान्तरित कर ईसाई बना लिया गया। और ईसाइयों ने यहूदियों के सातवें दिन (शनिवार) की पूजा-प्रथा को त्याग कर उसके स्थान पर सूर्य पूजा (रविवार) के दिन को अपनी चर्च-प्रार्थनाओं के लिए पवित्र मान लिया। वे पूर्व दिशा की ओर मुंह करके प्रार्थनाएं करने लगे। मित्र-पूजा तथा ईसाइयत में अनेक समान बिन्दु हैं।

चार्ल्स स्मिथ ने अपनी पुस्तक Bible In The Balance में Henry Bradwick ने अपनी पुस्तक में तथा Arnold J. Toynbee ने अपने ग्रन्थ A Study of History में यही मत प्रतिपादित किया है कि क्रिसमस वस्तुतः मित्र-पूजा का सूर्य पूजा महोत्सव ही है तथा सूर्य का ज्योति मण्डल ईसा के मुख मण्डल के पीछे दिखाकर प्रारम्भ में पादरियों ने भोली-भाली जनता को यह कहकर ठगा कि यह ईसा ही सूर्य देवता है तथा इसकी पूजा ही सूर्य पूजा है। उसे (Sun God) सूर्य भगवान् के स्थान पर Son of God (भगवान का पुत्र) प्रचारित किया जाने लगा।

अयनों के चलन के कारण 100 वर्ष में उत्सव का दिन ऋतु के दिन से एक दिन आगे बढ़ जाता है।

100 वर्ष पूर्व 12 जनवरी को मकर संक्रांति के दिन स्वामी विवेकानंद का जन्म हुआ था। अब मकर संक्रांति पर्व 13-14 जनवरी को पड़ने लगा है। इसी प्रकार 1800 वर्ष पूर्व मकर संक्रांति पर्व 24-25 दिसम्बर को मनाया जाता था। 1800 वर्षों के उपरान्त पर्व की तिथि ऋतु परिवर्तन की तिथि 23 दिसम्बर से 18-19 दिन आगे बढ़ गई है इसलिए आज मकर संक्रांति की ऋतु तिथि 23 दिसम्बर होते हुए भी पर्व तिथि 13-14 जनवरी को मनाई जाती है।

सृष्टि के उषाकाल में गायत्री के मन्त्रोचारण द्वारा जिस भगवान् सूर्यनारायण का स्तवन किया गया, आर्यान (ईरान) से लेकर मिस्र तक जिस सूर्य-पूजा का प्रकाश फैला, जिस मित्र पूजा के विशाल स्मारक सारे यूरोप में ऋषि देश (रसिया Russia) से आंग्लदेश तक फैले, जिसका सबसे बड़ा ऋतुपर्व मकर संक्रांति आज तक परम पवित्र है उसी ज्योतिर्मय सूर्य भगवान की उधार ली हुई उद्धृत ज्योति से क्रिसमस का महापर्व जगमगा रहा है। क्या विश्वभर के ईसाई बन्धुगण सत्य का सम्मान करते हुए क्रिसमस पूजा के पर्व पर उसे अस्तित्व देने वाली भारत की अमर, अविनश्वर ज्योति की कृतज्ञ वन्दनायें करेंगे?

माधुर्य एवं सुवास का पर्व : वसन्त पंचमी

शुक्लां ब्रह्मविचार सार परमामाद्यां जगद् व्यापिनीम्,
वीणा पुस्तक धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फटिक मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

•

कत लक्ष वरषेर तपस्यार फले
धरणीर तले
फुटियाछे आजि ए माधवी
ए आनन्द छवि
युगे युगे ढाका छिल अलक्ष्येर
वृक्षेर आँचले।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इन पंक्तियों में माधव वसन्त की हृदयहारी झाँकी है—'न जाने पृथ्वी की कितने लक्ष वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप आज धरती पर मादक माधवी, वसन्त ऋतु प्रस्फुटित हुई है। यह आनन्द छवि युग-युग से पृथ्वी के गर्भ में ही वृक्षों के आँचल के नीचे अलक्ष्य रूप में छिपी पड़ी थी, जो आज वसन्त सुषमा के रूप में प्रकट हो उठी है।'

वसन्त प्रकृति के ललित शृंगार का पर्व है। यह जीवन का अमृत, धरती का यौवन, प्रेम की मादकता भरा माधव, फूलों के नृत्य लालित्य से भरपूर कुसुमाकर, मधु-मधुरिमा की स्रोतस्विनी बहाने वाला मधुऋतु तथा केशरी पाग सजा कर प्रकृति रूपी सुन्दरी को वरने के लिए आने वाला दूल्हा ऋतुराज है।

जहाँ संसार के अन्य देशों में केवल 4 ऋतुएँ ही होती हैं, प्रकृति के पालने, इस भारत देश में—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, हेमन्त और शीत—6 ऋतुएँ वर्ष भर के कालचक्र में घूमती हुई बारी-बारी से आती हैं तथा धरती पर अपना वैभव बिखेर जाती हैं।

सृष्टि का उदय—वसन्त सृष्टि का सर्वप्रथम उत्सव माना जाता है। आनन्दस्वरूप परमेश्वर से ही सारी सृष्टि उद्भूत हुई है। वसन्तोत्सव पर आनन्दामृतत्व परमपुरुष परमेश्वर के दर्शन प्रकृति के माध्यम से होते हैं। तैतिरीयोपनिषद् के अनुसार ब्रह्माजी ने आज ही के दिन सृष्टि की रचना की। कुछ अन्य भारतीय विद्वानों के अनुसार मकर संक्रांति पर्व पर हमारी धरती सूर्य से पृथक् हुई तथा वसन्त के दिन धरती पर चेतन सृष्टि प्रारम्भ हुई। अतः वसन्त चैतन्य का पर्व है।

प्रकृति-पुरुष की लीला का उत्सव—प्रकृति स्वतः जड़ है। किन्तु उसमें चैतन्य का समावेश होने से वह पुरुष की सहचरी बन जाती है। वसन्त उत्सव पर प्रकृति का रोम-रोम खिल उठता है। धरती के कण-कण से फूटने वाले सुन्दर पुष्प उस विराट् की अर्चना करते हैं। धरती स्वयं आकाश से मिलने के लिए आतुर हो उठती हैं। प्रकृति की चरितार्थता पुरुष के पावन मिलन में ही है। जो लोग पुरुष की सत्ता स्वीकार किए बिना प्रकृति का भोग करते हैं वे तो प्रकृति माता को लांछित करने वाले हैं। माता पालन के लिए है, भोग-वासना के लिए नहीं।

सरस्वती माता का उदय पर्व—वसन्त उत्सव सरस्वती-पूजा के नाम से भी विख्यात है। इस दिन सरस्वती माता का प्रादुर्भाव माना जाता है। सरस्वती ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं। गीता में भगवान् कहते हैं—'ज्ञान के समान पवित्र अन्य वस्तु संसार में कोई नहीं है।' वेद कहता है—'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**'। पुराणों के अनुसार इस दिन भगवान् विष्णु ने स्वयं सरस्वती माता को आशीर्वाद दिया। प्राचीनकाल में गुरुकुलों में नया प्रवेश पाने वाले छात्रों को आज के दिन पाठशालाओं में भेजा जाता था तथा वे सरस्वती कवच के पाठ के बाद अपना प्रथम पाठ सीखते थे।

पंजाब में सरस्वती नदी के पावन तीर पर धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में सहस्रों ज्ञानसत्र होते रहे हैं। वहीं भगवान् के श्रीमुख से गीता-ज्ञानामृत भी प्रकट हुआ। सरस्वती की अर्चना विश्व भर में प्रचलित हुई। हमारी 'जगद्गुरु भारत प्रदर्शनी' में मंगोलिया से प्राप्त सरस्वती माता का वृहत् चित्र है। वहाँ ब्रह्माजी के समान सरस्वती भी चतुर्मुख है। एक ओर वह वीणावादिनी है, तो दूसरी ओर तारा के समान धर्मरक्षा के लिए ज्वलन्त खड्ग धारण किए हुए है। इसी प्रकार चीन में जेड Jade नामक श्वेत पत्थर की बनी हुई वीणावादिनी सरस्वती की मूर्ति का रंगीन चित्र प्रदर्शनी में संगृहीत है। सारे दक्षिण-पूर्व एशिया में भी भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ सरस्वती पूजन का भी सुन्दर प्रसार हुआ। रूस में लिथूनिया नामक राज्य में एक नदी का नाम 'सरोवती' है, जिसका मूल नाम सरस्वती ही था।

विद्वानों का सम्मान—प्राचीन भारतीय राजा-महाराजा आज के दिन अपने समय के महान् कलाकारों एवं विद्वानों का सम्मान कर उन्हें बहुमूल्य भेंट देते थे।

मानव की मूलभूत चेतना ही कला एवं साहित्य के रूप में प्रस्फुटित होती है। जैसे प्रकृति के अंतस् में छिपी हुई चेतना फूलों के रूप में प्रकट होती है उसी प्रकार मानव के अंतस् की चेतना साहित्य एवं कला के सुन्दर फूलों के रूप में फूट निकलती है। अतः वसन्तोत्सव पर मानव के हृदय-वसन्त के फूलों की सुवास प्राप्त करने के लिए काव्यकला गोष्ठियाँ होती थीं।

श्रीपंचमी

मद्रास तथा महाराष्ट्र में यह उत्सव श्रीपंचमी के नाम से विख्यात है। यह माना जाता है कि समुद्र मंथन से आज के दिन लक्ष्मी का जन्म हुआ। समुद्र मंथन की कथा का संदेश है कि लक्ष्मी परिश्रम से ही प्राप्त होती है। लक्ष्मी जो पद्म-सम्भवा है वह श्रमसम्भवा भी हैं।

लक्ष्मी बनाम सरस्वती—संसार में प्रायः देखा गया है कि जिन्हें लक्ष्मी का वरदान प्राप्त होता है, सरस्वती उन पर रुष्ट ही रहती है। बड़े-बड़े साहूकार प्रायः विद्याविहीन, निरक्षर भट्टाचार्य ही होते हैं तथा बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् निर्धनता की छाया में पलते हैं। वास्तव में लक्ष्मी का वाहन उल्लू है तथा जो केवल सोने-चांदी के ठीकरों को ढोते फिरते हैं वे उल्लू के समान प्रकाश के प्रति अन्धे तथा मूर्खता के अवतार हैं। सरस्वती का वाहन हंस है जो पावित्र्य एवं विवेक का प्रतीक है। अतः सरस्वती भक्त संसार सागर में तैरने वाले हंस हैं जो नीर-क्षीर-विवेक कर सकते हैं। हंस निर्लिप्त आत्मा का प्रतीक है। अतः परम तत्त्व को पाने वाले महापुरुषों को परमहंस कहा जाता है। लक्ष्मी के भी दो रूप हैं—कुलक्ष्मी का वाहन उलूक है, सुलक्ष्मी का आसन कमल है। वह नारायण की सहचरी, लक्ष्मी, कमला, पद्मा, पद्मसम्भवा है। हंस के समान कमल भी निर्लिप्त आत्मा का प्रतीक है। अतः सच्चे अर्थों में लक्ष्मी के उपासक सरस्वती के भी प्यारे हैं। वसन्त सरस्वती तथा लक्ष्मी की सम्मिलित पूजा का पर्व है।

भाग्य बनाम श्रम—प्रारब्ध और पुरुषार्थ में पुराना संघर्ष चला आ रहा है, लक्ष्मी प्रारब्ध बनाने वाली है, अतः प्रायः अधिकांश लोग उसी का सहारा लेते हैं। योगीराज अरविन्द ने एक दृष्टान्त में इसे स्पष्ट किया है। लक्ष्मी जब धरती पर उतरी तो धरती ने उसे अधर में ही रोकते हुए कहा—शुभे! तुम मर्त्यलोक में आ तो रही हो किन्तु वहाँ की भांति सदैव वरदात्री मत रहना। तुमने हर याचना पर वहाँ वर दे-देकर स्वर्गवासियों को चिर आलसी बना दिया। लक्ष्मी ने कहा—मैं तो वहीं करूँगी जो करती आई हूँ। अपने बेटों की खबर तुम लेती रहना।'....धरती तुनक उठी—'यहाँ मेरी चलेगी, मेरा दूध पीने वाला खुद कमाएगा, तुमसे मांगेगा कभी नहीं।' लक्ष्मी मुसकराई और धरती पर उतर आई। और, धरती आज सौ-सौ आंसू रोती है कि सौ में निन्यानबे धरा-सुत लक्ष्मी से ही मांगते हैं, पराक्रम से नहीं कमाते।

गाय, पृथ्वी तथा ज्ञान—एक पुराणकथा के अनुसार एक बार आज के दिन अनेक सन्त-महात्मा एकत्र होकर शिव के पास पहुँचे। शिव ने उपदेश दिया—गाय, पृथ्वी तथा सरस्वती ये तीनों माताएँ हैं, इनकी रक्षा करो, सब समस्याएं हल हो जाएंगी। वास्तव में गो रक्षा से कृषि की उन्नति होती है, खाद्य की समस्या हल होती है तथा राष्ट्र का स्वास्थ्य बढ़ता है, पृथ्वी की रक्षा से राष्ट्र का स्वातंत्र्य स्थिर रहता है तथा ज्ञान की रक्षा से मानव की सर्वविध उन्नति संभव है।

मदनोत्सव—वसन्त कामदेव का मादक उत्सव भी माना जाता है। बाइबिल तथा कुरान में एक शैतान की कल्पना की गई है जो खुदा का बड़ा शत्रु है तथा खुदा से निरन्तर संघर्ष में रत है। दोनों धर्म पुस्तकें हमें उपदेश देती हैं कि अपने नेक कर्मों द्वारा खुदा की मदद करनी चाहिए ताकि कहीं शैतान उसको पीठ न लगा दे। इसके मुकाबले में भारतीय संस्कृति में कामदेव स्वयं देवकोटि में गिने जाते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।' अर्थात् हे अर्जुन! जो काम धर्म के अनुकूल है, वह मैं ही हूँ। वे पुनः कहते हैं—'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः'—'प्रजनन करने वाले साधनों में मैं स्वयं कामदेव हूँ।' काम को भारतीय संस्कृति के चार आदर्शों, चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में भी स्थान दिया गया है। किन्तु मानव को धर्म के सहित काम एवं अर्थ की संतुष्टि करते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्त करना है। काम प्रथम सीढ़ी है तो मोक्ष अन्तिम। प्रथम सीढ़ी पर बैठा रहने वाला ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। काम को सर्वस्व मानने वाला राम तक नहीं पहुँच पाता।

वसन्त पंचमी वह ऐतिहासिक दिन माना जाता है जब स्वयं कामदेव ने भगवान् शंकर पर काम प्रहार करने की धृष्टता की। उद्दाम एवं उदण्ड काम पर खुला हुआ शंकर का तृतीय नेत्र प्रत्येक कामांध व्यक्ति के लिए एक ज्वलन्त चेतावनी है। वसन्त कामदेव का सेनापति माना जाता है, पुरुष उसके बाण तथा स्त्रियाँ उसकी सैनिक हैं। फूलों, स्त्रियों एवं वसन्त की मादकता के भीतर भी जो स्थिरचित्त रह सकता है वह शिव है। भगवान् गीता में कहते हैं—'मासानाम् मार्गशीर्षोऽहम ऋतूनाम् कुसुमाकरः।' मैं मासों में मार्गशीर्ष का मास हूँ तथा ऋतुओं में कुसुमाकर वसन्त हूँ।'

बालक हकीकतराय—ऐतिहासिक दृष्टि से वसन्तोत्सव सियालकोट के धर्मी बालक हकीकतराय के बलिदान की पुनीत स्मृति दिलाने वाला है। भारत विभाजन के कारण लवपुरी (लाहौर) में बनी उसी शहीद की समाधि हम से छिन अवश्य चुकी है किन्तु भारत के कोटि-कोटि जनमानस में स्थित उस वीर की स्मृति समाधि पर पुष्प चढ़ाने के लिए ही मानो हर वर्ष वसन्त बहार आती है।

सद्‌गुरु रामसिंह का जन्मदिन—सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में पंजाब ने कोई शोभन कार्य नहीं किया। विशेष रूप से सिक्ख राज्यों ने विश्वासघात किया। उस कलंक को धोने के लिए पंजाब में नामधारी पन्थ का उदय हुआ। इन महान् क्रान्तिकारी-बलिदानी वीरों के पन्थ को जन्म देने वाले इस सद्‌गुरु रामसिंह का जन्म सन् 1815 में वसन्त के दिन पंजाब के प्रसिद्ध नगर लुधियाना में हुआ था। उन्होंने अपने पन्थ में धर्म की पवित्रता एवं देशभक्ति की महत्ता पर बल दिया। पंजाब में अंग्रेजों के शासन को ललकारने वाले नामधारी वीरों के कूका आन्दोलन के जन्मदाता यही थे। अमृतसर के बूचड़खाने को बन्द कर वहाँ के विधर्मियों को कूका वीरों ने कत्ल कर दिया था। उन्हें तोपों से बांधकर उड़ाया गया। इस प्रकार गो रक्षा के कार्य के लिए वे हंसते-हंसते बलिदान हो गए। एक अबोध बालक जिसके ऊपर से तोप का गोला निकल जाता था स्वयं एक पत्थर रखकर उस पर खड़ा हो गया ताकि तोप के गोले से वह भी शहीद हो जाय।

महाकवि निराला

आधुनिक हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ महाकवि, महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म भी वसन्तोत्सव के पावन पर्व पर ही हुआ था। जीवन में संघर्ष की असंख्य ठोकरें खा कर जिस साहित्य सेवी ने अपनी रसवन्ती एवं ओजवन्ती कला से साहित्य मन्दिर को सम्पन्न किया है, जिसने जीवन का विष पी-पी कर प्रतिदिन समाज को काव्यामृत पिलाया है उस महाकवि निराला का यश निराला ही था। वासन्ती गीतों को गाने वाला यह साहित्य-स्रष्टा हिन्दी जगत् को वसन्तोत्सव की ही भेंट था।

वसन्तोत्सव का संदेश है—मानवता की फुलवारी प्रेम, माधुर्य, वैभव, विज्ञान, स्वातंत्र्य एवं सौन्दर्य के मनोहारी फूलों से सदा झूमती रहे।

ज्ञान, सौन्दर्य, काव्य, कला, लालित्य एवं पावित्र्य की अधिष्ठात्री वीणावादिनी सरस्वती माता से यही अभ्यर्थना है।

'ईसा से अनेक शताब्दियों पूर्व, इंग्लैण्ड-वासी अपनी रंगी हुई देह पर कच्ची खाल धारण करते थे, और जंगलियों की भाँति जंगलों में घूमा करते थे, इतिहास के उस पुराने काल में भी भारत अत्यन्त उच्चकोटि की सभ्यता का आनन्द ले रहा था।'

—लार्ड मैकाले

पर्व की प्रज्ञा को चुनौती

कोटिशः वंदित, जनगण पूजित रामचरितमानस के अमर गायक श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'मुदमंगलमय संत समाज' की वन्दना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है। मैं एक राष्ट्र के महान् उत्सवों को भी संस्कृति सुरसरी के पावन तीर्थ मानता हूँ क्योंकि वे अपने अविनश्वर संदेश द्वारा जाति को नव जीवन प्रदान करते हैं तथा आत्मगौरव-शून्य जाति के पुनरुद्धार का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। व्यक्तियों तथा जातियों को संकट-सागर से उबार कर उन्हें तारने के कारण हमारे राष्ट्रीय उत्सव पुण्यपावन तीर्थ ही हैं।

होली को मैं भारत की सांस्कृतिक सरिता का आनन्द तीर्थ मानता हूँ। जैसे गंगोत्री से निकलने वाली पावन गंगधारा में अनेकानेक छोटी-बड़ी नदियों का संगम होता रहता है तथा मंदाकिनी की अमृत धारा में विलीन होकर वे भी शुद्धोत्तम बन जाती हैं, उसी प्रकार होली के सर्व प्राचीन पर्व में इतने छोटे-बड़े पर्व घुल-मिल गए हैं कि आज संस्कृति सरिता के जल बिन्दुओं को पृथक्-पृथक् कर उनका काल निर्धारण करना कुछ दुष्कर कार्य बन गया है।

होली का महापर्व आया और चला गया। अनेकों के मुंह लाल, नीले, काले हुए, अनेकों के वस्त्रों पर ही नहीं मान-सम्मान पर भी कीचड़ उछाला गया, चारित्रिक संयम का बांध भी अनेक स्थानों पर टूटा और इसी प्रकार से वारुणी की लाली में भी अनेकों के कलेजे नहाए—और इसे ही हमने होली समझ लिया।

होली पर्व की ऐसी दुर्दशा देख कर अनेकानेक नेतागण खून के आंसू बहा चुके हैं। अनेकों ने उपदेश भी दिए कि होली का परिष्कार होना चाहिए, किन्तु परिष्कार या सुधार न हो सकने में बाधा क्या है? मैं समझता हूँ कि जब तक जनसाधारण को पर्व का यथार्थ महत्त्व समझ में नहीं आता और जब तक नेतागण आदर्श होली का आयोजन करके जनगण के सम्मुख एक मिसाल उपस्थित नहीं करते तब तक होली का परिष्कार कठिन है।

बहुत कम लोग उत्सव के उद्‍गम का विचार करते हैं। मेरा यह दावा है एक इस पर्व के इतिहास में सांस्कृतिक महत्त्व की इतनी अधिक सामग्री मिलती है कि

यदि देश के गवेषणात्मक प्रतिभा वाले विद्वान् इस ओर ध्यान देवें तो भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास का एक भूला हुआ अध्याय पुनः प्राप्त हो जाए। अतः यह पर्व देश की पुरातत्त्वान्वेषी प्रतिभा को चुनौती है।

चन्द्रमा जयन्ती—पं. हनुमान शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक व्रत परिचय में फाल्गुन पूर्णिमा की महिमा का बखान करते हुए लिखा है कि इसी दिन चन्द्रमा प्रकट हुआ था। अतः इस उत्सव पर चन्द्रोदय के समय चन्द्रमा का पूजन करने का विधान है। यह एक नक्षत्र वैज्ञानिक खोज का सुन्दर विषय है। हमारे प्राचीन वाङ्मय में ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा है। वेदों में अनेकानेक नक्षत्र वैज्ञानिक तथ्य बिखरे पड़े हैं जिनको देखकर पश्चिम के बड़े-बड़े वैज्ञानिक दांतों तले उंगली दबा लेते हैं। सूर्य से पृथ्वी का जन्म, पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करना तथा पृथ्वी का गोलत्व इत्यादि महान् तथ्य वेदों में वर्णित मिलते हैं। वेदों में चन्द्रमा पृथ्वी के उपग्रह के रूप में वर्णित है, उसका पृथ्वी की परिक्रमा करना भी वेदों में प्रमाणित है। तैत्तरीय संहिता में लिखा है—

सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। (तै. सं. 3/4/7/1)

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य की रश्मियों से प्रकाशित होता है। महाभारत (शांतिपर्व अ. 100) में लिखा है—'यथा हिमवतः पार्श्वं पृष्ठं चन्द्रमसो यथा। न दृष्टपूर्वे मनुजैः' अर्थात् जिस प्रकार हिमालय का पार्श्व देखने पर पृष्ठ नहीं दिखता वैसे ही चन्द्रमा का पूर्व भाग मनुष्यों को दिखाई नहीं देता। ये सब ऐसे विस्मयकारी नक्षत्र वैज्ञानिक सत्य हैं जिन्हें विज्ञान ने अभी कल ही खोजा है। किन्तु हमारे धर्मग्रन्थों में ये तथ्य अनादि काल से ही प्राप्त होते हैं।

भारत के नक्षत्र वैज्ञानिकों तथा ज्योतिषियों का परम कर्तव्य है कि इस विषय में पर्याप्त खोज करके कलानिधि चन्द्रमा का जयन्ती उत्सव खूब धूमधाम से मनाना प्रारम्भ करें। आज जब रूस कृत्रिम चाँद बनाने का उपक्रम कर रहा है तब क्या भारतवासी अपने पूर्वजों की असली चाँद के बारे में की हुई खोजों को भी भुला कर चन्द्रमा जयन्ती पर मुंह काला करके हिजड़ों के समान स्वांग भर कर ही होली मनाते रहेंगे?

सूर्य पूजा—कुछ विद्वानों के अनुसार यह सूर्य भगवान् की अर्चना का दिन है। इसके कारण के बारे में विद्वानों की सहमति नहीं है। पूर्णिमा वह पुनीत दिन है जब सूर्य की सम्पूर्ण किरणें चन्द्रमा पर पड़ सकती हैं तथा पूर्ण चन्द्र नवनीत के गोले के समान अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। होली रंगों का उत्सव है। सभी रंग सूर्य के श्वेत प्रकाश से ही निकले हैं। इन्द्रधनुष में प्रकट होने वाले सात रंग ही सूर्य के रथ के सात घोड़े हैं। सूर्य पूजा संसार के अनेकानेक देशों में प्रचलित

है। स्वस्तिक का चिह्न मूलतः सूर्य का चिह्न ही माना जाता है। भारत ने तो ईश्वर को भी सूर्यात्मा, सूर्य-नारायण, हिरण्यगर्भ, सविता इत्यादि नामों से गाया है। इस विषय में भी पर्याप्त अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। क्या कोई इस चुनौती को स्वीकार करेगा?

वसन्तोत्सव—महासूर्य से जन्म पाने के पश्चात् धरती सदा सूर्य के प्रति किसी अनिर्वचनीय प्रेम से खिंची रही है। आज तक वह सूर्य की परिक्रमा कर रही है, धरती के उत्तरी ध्रुव के तनिक झुके रहने के कारण ही धरती तल पर भिन्न-भिन्न ऋतुएं संभव हो सकी हैं। प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन से पता चलता है कि पहले वसन्त उत्सव होली पर ही मनाया जाता था इसलिए इसे 'कामदहन' भी कहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि वसन्त का वास्तविक उत्सव होली (फाल्गुन पूर्णिमा) ही था। किन्तु जब से कामदेव ने माघशुक्ला पंचमी को भगवान् शिव पर आक्रमण करने के लिए उसी समय कृत्रिम वसन्त का वातावरण निर्माण कर दिया तब से वसन्त उत्सव वसन्त पंचमी नाम से रूढ़ हो गया और होली का उत्सव पृथक् हो गया। मध्यकाल में वसन्तोत्सव वसन्त पंचमी से लेकर फाल्गुन पूर्णिमा तक लगभग एक मास और 10 दिन मनाया जाता था। वसन्त में धरती अपने प्रियतम सूर्य के सम्मुख होते ही प्रेमाकुलता से रोमांचित हो जाती है तथा उस पर उगने वाले लता-तृण, वीरुत् इत्यादि उसके तन की रोमावलि के समान लहलहाने लगते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीता के आधार पर यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि महाभारत काल में वसन्तोत्सव मार्गशीर्ष मास में पड़ता था। वेद में कुसुमाकर को—'मुखं ऋतूनाम्' कह कर सृष्टि की सब से पहली ऋतु कहा गया है। यह भी माना जाता है कि धरती पर चेतन सृष्टि उसी दिन प्रारम्भ हुई। इस प्रकार होली या वसन्तोत्सव (फाल्गुन-पूर्णिमा) चेतन सृष्टि का सब से प्रथम उत्सव सिद्ध होता है। जब से मानव ने होश संभाला होगा उसने अपने चहुँ-ओर प्रकृति की रंगीन छटा को निखरे हुए पाया होगा। अतः मानव की प्रकृति में प्रथम आह्लाद का परिचायक यह होली उत्सव है। इस विषय में भी काफी अनुसन्धान की अपेक्षा है।

मनु जयन्ती—मानव-जाति के आदि वंशधर भगवान् मनु का जयन्ती उत्सव भी फाल्गुनी पूर्णिमा को माना जाता है। श्री रघुनन्दनदत्त बन्धु ने अपनी पुस्तक 'सनातन धर्म शिक्षक' के पृष्ठ 102 पर यह तथ्य वर्णित किया है। श्री ब्रह्मदत्त शर्मा के 14 मनुओं में से 5 की जन्म तिथियाँ पूर्णिमाओं पर पड़ती हैं। पुराणों के अनुसार भी वर्तमान मन्वंतर के आदिपुरुष वैवस्वत मनु का जन्म फाल्गुनी पूर्णिमा को हुआ था। यह बड़े गौरव का विषय है कि हम मानवों के आदिम-वंशधर मनु का जन्मोत्सव हमारे वाङ्मय में उल्लिखित है। मनु के पुत्र होने के कारण ही

हम मानव, मनुज या मनुष्य हैं। अंग्रेजी का मैन शब्द भी मनु से निकला है। उस आदिम पुरुष को ही पश्चिमी साहित्य Adam बाबा आदम कहते हैं तथा उसी की सन्तति आदमी हैं।

जल प्रलय के बाद केवल मनु ही शेष बचे थे अतः उन्हें शिष्ट (अवशिष्ट या बचा हुआ) माना जाता है उन 'शिष्ट' (मनु) को ही आचार नीति का आदिगुरु मानते हैं। उन 'शिष्ट' द्वारा प्रतिपादित आचार को ही 'शिष्टाचार' कहा जाता है। हमारे राज्य शासन, धर्म विज्ञान तथा दंड-विधान पर आज तक भी भगवान् मनु की 'मनु स्मृति' की अमिट छाप है। आज के कदाचार, दुराचार तथा व्यभिचार के युग में हमें अपने आदि पितामह मनु का सिखाया हुआ शिष्टाचार तथा सदाचार पुनः सीखना होगा। शास्त्र साक्षी हैं—'आचार हीनं न पुनन्तिवेदाः' अर्थात् आचारभ्रष्ट व्यक्ति को स्वयं वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

मानवता के मूल, भगवान् मनु की पावन जयन्ती के विषय में खोज करने के लिये क्या कोई मनु का बेटा पर्व की चुनौती स्वीकार करेगा?

प्रह्लाद विजय होलिका दहन—रावी के पार जो भारत का अंग कट कर आज पाकिस्तान कहा जाता है उसी पश्चिमी पंजाब में मूलत्राण (मुलतान) नगर को धर्म का त्राण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सत्युग में वहाँ असुर राजा हिरण्यकशिपु राज्य करता था। उसके धर्मात्मा पुत्र प्रह्लाद की गाथा किसने नहीं सुनी होगी। जो प्रश्न हमारी प्रज्ञा को चुनौती देता है वह यह है कि क्या प्रह्लाद की गाथा गाथा ही बनी रहेगी या कभी भारत के इतिहास में स्थान पायेगी। सतयुग कितने वर्ष पहले की कहानी है? असुर कौन थे? श्री रांगेय राघव के अनुसार वे असीरीया से आने वाले विदेशी आक्रमणकारी थे। ईरान के असुरों ने अपने ईश्वर को भी 'अहूर मजदा' (सबसे बड़ा अहुर) मान लिया था। श्री उमाकान्त आप्टे ने अपने ग्रन्थ 'हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा' में हिरण्याक्ष का अर्थ वह असुर जिसकी आंख (अक्ष) भारत के हिरण्य (सोने) पर लगी हुई थी।

उन्होंने वराह अवतार का स्थान काश्मीर में वाराहमूल (बारामूला) माना है। जनगण का जंगली शूकर के समान एकदम उमड़ कर हिरण्याक्ष को मार डालना ही वराह अवतार माना गया। उसी हिरण्याक्ष का छोटा भाई हिरण्यकशिपु भारत की सोने की चिड़िया को हथियाने आया था। प्रह्लाद का जन्म भारत में (मुलतान) में हुआ था। भारत का अन्न-जल खा कर वह भारत भक्त बन गया था। पिता द्वारा अनेकानेक यातनाओं के दिये जाने के उपरान्त भी उसने भारत भक्ति के प्रण को नहीं त्यागा। माया की होलिका उस को जलाने को उद्यत हुई, किन्तु वह स्वयं जल गई। भारत की धर्मप्राण जनता ने ही नर होते हुए भी सिंह-पराक्रम दिखाया तथा हिरण्यकशिपु का नाश किया। प्रह्लाद का आध्यात्मिक अर्थ भी बड़ा गम्भीर है।

क्या कोई भारतीय प्रह्लाद की भारत भक्ति के प्रति कृतज्ञता के भाव से उक्त कथा का ऐतिहासिक शोध कर के भारत के इतिहास को समृद्ध बनाएगा।

ढूंढा राक्षसी और रघु—शास्त्र में कहा है कि इसी दिन महाराजा रघु ने बच्चों को सताने वाली ढूंढा नामक राक्षसी को भस्म कर दिया था। इस विषय में भी ऐतिहासिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। ढूंढा कौन थी? उसके नाश का अर्थ क्या है?

नवान्न यज्ञ—होली को नई फसल की खुशी में किये गये यज्ञ का अवशिष्ट रूप भी माना जाता है। जौ की अधभुनी बालियों को भी होलक कहते हैं, यह भी भाषा विज्ञान तथा समाज शास्त्र के अनुसंधान का अच्छा विषय है।

चैतन्य महाप्रभु जयन्ती—फाल्गुनी पूर्णिमा के रजत प्रकाश में 16वीं शती में भारत में रसावतार भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ था। यह कितने खेद का विषय है कि इतनी महान् आध्यात्मिक विभूति के जन्मोत्सव पर हम अश्लील एवं अशिष्ट कृत्यों में उलझे रहते हैं। महाप्रभु की जयन्ती का भी होली पर्व पर काफी प्रचार होने की आवश्यकता है। यह सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं को पर्व की चुनौती है।

शिवाजी जन्म का मूल—16वीं शती में महाराष्ट्र में एक बार होली के पर्व पर बालक शाहजी तथा नन्ही बालिका जीजाबाई का होली का सुन्दर खेल देखकर सरदार लक्खू जी बोल उठा—'क्या जोड़ी क्या रूप।' इस खेल में ही उनके स्वयंवर की पूर्व-घोषणा हो गई। इन्हीं पवित्र दम्पती से भारत को भारतीयता के प्राणरक्षक छत्रपति शिवाजी महाराज मिले। आज कितने भारतीय माँ जीजाबाई के दुलारे शिवाजी का स्मरण भी होली पर करते हैं?

समानता का प्रिय पर्व—होलिका जलाने की शास्त्र की आज्ञा है कि अछूत के घर के बालकों द्वारा अग्नि मंगवा कर होली को दीप्यमान किया जाय। फिर इस दिन अछूतों से गले मिलने का भी विधान है। इससे प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के बारे में दृष्टि मिलती है। काका कालेलकर ने अपनी पुस्तक 'जीवन का काव्य' में होली को 'गुलामों का त्योहार' कहा है। यह युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। यदि हम पर्व का संदेश समझें तो यह शक्ति एवं भक्ति, मुक्ति एवं भक्ति का पावन तीर्थस्थल है। क्या हम पर्व का पावन संदेश सुनेंगे? क्या हम महान् पर्व की महान् चुनौती को स्वीकार करेंगे?

अमृत कुंभ के सुधा बिन्दु

शाश्वत पर्व

इस वर्ष गोदावरी तीर पर, नासिक (पंचवटी) में कुंभ का विराट् महापर्व चल रहा है। कुंभ की गाथा चिर-प्राचीन गाथा है और कुंभ पर्व भारत का चिर नवीन एवं शाश्वत पर्व है। देवों एवं असुरों ने जब समुद्र मंथन किया तो उसमें से चौदह रत्न प्रकट हुए—उच्चेश्रवा घोड़ा, कामधेनु, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा, विष, दिव्यरथ, ऐरावत गज, पारिजात वृक्ष, वीणा, रम्भादि अप्सराएं, लक्ष्मी माता, धनवंतरि वैद्य और अमृत कुंभ।

सुधा बिन्दु

अमृत कुंभ को ले कर देवों और असुरों में छीना-झपटी के समय उसकी कुछ बूंदें धरती पर प्रयाग, हरिद्वार, नासिक एवं उज्जैन में गिरीं जहाँ बारी-बारी से प्रति बारह वर्ष पर कुंभ पर्व आता है तथा वहाँ के पावन जलों में अमृत का दिव्य स्पर्श प्राप्त होता है। कुछ पुराणों की कथा में अपनी माता विनता को उसकी सौत कद्रू (सर्पों की माँ) की पराधीनता से मुक्त कराने के लिए गरुड जी स्वर्ग से अमृत कुंभ ले कर आये थे। उसी अमृत कुंभ के कुछ बिन्दु धरती के चार स्थलों पर गिरने से कुंभ पर्व की परम्परा प्रारम्भ हुई। इन्द्र पुत्र जयन्त सर्पों द्वारा अमृतपान करने से पूर्व ही एक विशाल पक्षी का रूप धारण कर उस अमृत कुंभ को ले कर 12 दिन की उड़ान के पश्चात् पुनः स्वर्ग पहुँच गया। देवों का एक दिन मानवों के एक वर्ष के बराबर होता है। मानव सृष्टि में छः मास का उत्तरायण (मकर संक्रांति से रक्षा-बंधन) देवों का दिन का समय तथा छः मास का दक्षिणायन देवों की रात्रि है। इसीलिए जिस अमृत कुंभ की भू-स्वर्ग यात्रा में देवों को 12 दिन लगे उसका धरती पर पर्व प्रति 12 वर्ष पर मनाने की परम्परा चली आ रही है।

अनन्त की वंशी

पुराण काल की ये दिव्य-मधुर कल्पनाएं भी हमारे मानस को विकसित कर अनादि-अनन्त की वंशी की टेर के प्रति जागृत कर देती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान

भी स्वीकार करता है कि उदात्त भावनाओं से मानव मन का परिष्कार होता है तथा दूषित भावनाओं से उसका विकार होता है। अपने प्रत्येक छोटे-बड़े कर्म को धर्म से जोड़कर, सभी परम्परागत प्रतीकों में नदियों, पर्वतों, तीर्थों एवं देश के कण-कण में दिव्यता की पावन भावना रख अपने समस्त क्रियाकलापों को, समूचे जीवन को प्रभु समर्पित करने का महान् प्रयास कुंभ पर्व है।

अनेकता में एकता का पुण्य प्रयोग

कुंभ पर्व पर जैसे लाखों लाख श्रद्धालु नर-नारी बिना निमन्त्रण के, देश एवं विदेश से भी अपने घर-घाट एवं सुख-सुविधा का त्याग कर त्याग, तपस्या एवं तितिक्षा का जीवन बिताने के लिए इतने विशाल जनसमूह में एकत्र होते हैं, वह भारतीय संस्कृति की श्रद्धा-परम्परा का अलौकिक चमत्कार एवं भारतीय समाज की शतियों के विदेशी आक्रमणों के उपरान्त भी जीवित रखने का रहस्य-दर्शन है। यह अनेकता में एकता का समाजशास्त्रीय पुण्य प्रयोग भी है। कुंभ हमारी चिर-प्राचीन जाति की संजीवनदात्री प्रयोगशाला है।

नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ

विश्व हिन्दू परिषद के भूतपूर्व महामंत्री श्री रविशंकर आप्टे ने समुद्र मंथन की पौराणिक गाथा का नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ लगाया है। लोकमान्य तिलक के मतानुसार आर्य लोग पहले उत्तरी ध्रुव के निवासी थे जहाँ छः महीनों का दिन और छः महीनों की रात्रि होती है। श्री आप्टे का मत है कि वहाँ उन्हें छः मास के रात्रि काल में केवल 14 नक्षत्रों का परिचय हुआ था। छः मास के लम्बे दिन के समय उन्हें कोई नक्षत्र दिखाई ही नहीं दे सकते थे। जब उत्तरी ध्रुव में हिमयुग आ जाने से वहाँ की जलवायु असह्य हो गयी तो आर्य लोग दक्षिण में भारत भूमि की ओर बढ़े। तब उन्हें आकाश रूपी महासमुद्र में बारी-बारी से क्षितिज पर 14 नए नक्षत्रों के दर्शन हुए जिन्हें काव्य की रोमांचक भाषा में 14 रत्न कहा गया—यथा कौस्तुभ मणि, पारिजात, लक्ष्मी, अप्सरा, वारुणि, धनवंतरि और अमृत कुंभ इत्यादि। अमृत कुंभ ले जाने वाले गरुड को वेदांग ज्योतिष में श्येन (बाज पक्षी) कहा गया है तथा यूनानी पुराण गाथा में उसे Raven (काक जाति का बड़ा पक्षी) लिखा गया है।

गोदा-गंगा

कुंभ स्थल महाराष्ट्र में गोदावरी के तीर पर (नासिक तीर्थ में) है। गोदावरी दक्षिण की गंगा है। पश्चिमी घाट के सह्याद्रि पर्वत की ब्रह्मगिरि चोटी त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के पास से, पश्चिम समुद्रतट से मात्र 50 मील दूर से निकल कर गोदावरी पश्चिम की ओर न बह कर पूरे महाराष्ट्र एवं आन्ध्रप्रदेश की 900 मील की यात्रा करके अपना जल भार अथवा कर भार पूर्वी समुद्र की बंगाल की खाड़ी

में समर्पित कर देती है। ब्रह्मदेव की एक कल्पना में से जिस तरह सृष्टि का विस्तार होता है, वाल्मीकि की एक करुणामयी वेदना में से जिस तरह रामायणी-सृष्टि का विस्तार हुआ है, उसी तरह त्रयंबक के पहाड़-कगारों से टपकती हुई गोदावरी में से ही आगे जाकर राजमहेन्द्री की विशाल वारि-राशि का विस्तार हुआ है। आजकल राजमहेन्द्री में भी गोदावरी पुष्करम् का प्रति 12 वर्ष में मनाया जाने वाला प्रसिद्ध स्नानपर्व चलता है।

त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग

गोदावरी नदी को गौतमी भी कहते हैं। ऋषि गौतम ब्रह्मगिरि में रहते थे। 12 वर्ष तक सूखा पड़ने पर गौतम ने वरुण देवता की उपासना से एक ऐसा कुण्ड प्राप्त किया जिसके अशेष जल से गौतम के आश्रम की खेतियाँ लहलहाने लगीं। अन्य ऋषि चाहते थे कि गौतम अपनी तपस्या के बल से गंगा को खींच कर वहाँ लाये। उन्होंने एक माया की गाय गौतम के खेत में चरने के लिए भेज दी, जिसे हटाने के लिए गौतम ने ज्यों ही कुछ तिनकों से स्पर्श किया, त्यों ही वह माया की गाय मृतप्राय हो कर गिर पड़ी। गौतम ने इस पाप के मोचन के लिए भगवान् शंकर की तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने ब्रह्मगिरि पर्वत पर दक्षिण गंगा प्रवाहित कर दी तथा स्वयं त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में वहाँ स्थापित हो गए। भगवान शंकर ने अपनी गंगाजल वाली जटा का एक बाल गौतम को दिया और जब जल मृतप्राय गाय पर छींटा गया तो वह स्वस्थ-सजीव हो उठी। गो माता को नवजीवन प्रदान करने के कारण दक्षिण की गंगा गोदावरी अथवा गोदा गंगा कहलाई। ऋषि गौतम की प्रार्थना पर सब देवों ने स्वीकार किया कि प्रति 12 वर्ष पर जब बृहस्पति सिंह राशि में होगा और अमृत कुंभ का पर्व आएगा तब वे सब भी इसी तीर्थ में विराजमान होंगे।

पंचवटी (नासिक)

त्रेतायुग की पंचवटी का नाम ही नासिक है। महर्षि अगस्त्य विन्ध्याचल पार कर दक्षिणापथ में गए तथा पंचवटी पहुँच कर भगवान् श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। उस जनस्थान तक लंका के असुरों की मार पड़ती थी। राक्षस ऋषियों का रक्त पी कर उनकी सूखी हड्डियों के कंकाल फेंकते जाते थे जिससे श्वेत अस्थियों का एक पर्वत-सा बन गया था।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवर वृन्द विपुल संग लागे।।
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछि मुनिन्ह लागि अति दाया।।
जानतहूं पूछिय कस स्वामी। समदरसी तुम अन्तरजामी।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन छल छाए।।

निसिचर हीन करहुं मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाई जाई सुख दीन्ह।।

भगवान राम के सुख-दुःख की साक्षी : गोदावरी

काका कालेलकर के शब्दों में, 'श्रीरामचन्द्र के अत्यन्त सुख के दिन इस गोदावरी के तीर पर ही बीते थे और जीवन का दारुण आघात भी उन्हें यहीं सहना पड़ा था।'

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ।।

नासिका छेदन से नासिक

उसी पंचवटी में पाप लम्पटा शूर्पणखा की नासिका कट जाने से उसे नासिक नाम मिल गया। उसी पंचवटी में सीताहरण का दृश्य कितना हृदय विदारक है—

सीता कै विलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी।।
आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।।

समर्थ गुरु रामदास का तपस्या तीर्थ

छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने गोदावरी तीर पर गोबर के हनुमान् की स्थापना की थी। सम्भवतः उनकी भावना यही रही होगी कि यदि रामभक्त, बाल-ब्रह्मचारी हनुमान् पंचवटी में होते तो न सीता उन पर (लक्ष्मण के प्रति कहे कठोर वचन जैसा) तीखा वचन प्रहार करती और न रावण बजरंग बली के रहते सीता का हरण कर सकता। समर्थ गुरु रामदास ने पंचवटी के निकट टाकली स्थान पर एक गुफा में 12 वर्ष तपस्या की थी। वे दोपहर तक गोदावरी के जल में खड़े होकर जप करते तथा दोपहर बाद पंचवटी में मधुकरी (मांग) कर भगवान् राम को नैवेद्य लगाकर भोजन करते थे।

रामराज्य स्थापना की लालसा

काका कालेलकर गद्य काव्यमयी भाषा में गाने लगते हैं, 'माता गोदावरी', राम-लक्ष्मण-सीता से लेकर वृद्ध जटायु तक सब को तूने स्तन्यपान कराया है। तेरे किनारे शूरवीर भी पैदा हुए हैं और तत्त्व चिन्तक भी पैदा हुए हैं और संत भी पैदा हुए हैं तथा राजनीतिज्ञ भी। देशभक्त भी पैदा हुए हैं और ईश-भक्त भी। चारों वर्णों की तू माता है। मेरे पूर्वजों की तुम अधिष्ठात्री देवी हो। नई-नई आशाएं लेकर मैं तेरे दर्शन के लिए आया हूँ। दर्शन से तो कृतार्थ हो गया हूँ, किन्तु मेरी आशाएं तृप्त नहीं हुई हैं। जिस प्रकार तेरे किनारे रामचन्द्र ने दुष्ट रावण के विनाश का संकल्प किया था वैसा ही संकल्प मैं कब से अपने मन में लिए हुए हूँ। तेरी कृपा होगी तो हृदय में से तथा देश में से रावण का राज्य मिट जायेगा, रामराज्य की स्थापना होते मैं देखूंगा और फिर तेरे दर्शन के लिए आऊँगा।

वर्ष का प्रथम प्रभात

काल निरन्तर गतिमान है। सारा जगत् काल की ही लीला है। काल ही समस्त भावी की ओर बढ़ता हुआ उसे बलात् वर्तमान बनाता जा रहा है और प्रत्येक वर्तमान को निगल कर भूत के गर्त में फेंकता जा रहा है, विकराल काल सभी को लील रहा है। काल प्रवाह रूपी गरुड ही अपने दिन और रात्रि के दो बलवान डैनों से निरन्तर उड़ता हुआ, छोटे-छोटे सर्प रूपी कुण्डलित युगों को खाता जा रहा है। उस बलवान के (काल के) प्रहार से कौन बचा है?

बड़े-बड़े सम्राट् तथा साम्राज्य समय के बदलने के साथ ही काल-कवलित हो गए हैं। किन्तु काल के असंख्य प्रहारों को झेलते हुए तथा उत्थान और पतन की अनेक आंधियों और बवण्डरों से संघर्ष करने के उपरान्त भी हिन्दू संस्कृति काल का उपहास-सा करती हुई, अजर-अमर खड़ी है। इसका कारण यह है कि भारत के ऋषियों ने काल के भी 'महाकाल' को पहचान लिया था। ऋषियों ने आत्मा के अजरामर सुदृढ़ किले पर से काल पर दृष्टिपात किया, कालातीत बन कर काल की गणना की, इसीलिए उनकी काल गणना भी ठीक निकली तथा उनकी महान् मृत्युंजय संस्कृति भी काल पर विजयी हुई।

नववर्ष प्रतिपदा का मंगलमय पर्व विश्व के प्रथम सूर्योदय का पर्व है। आज से 2015 वर्ष पूर्व केवल परदुःखभंजक, प्रजावत्सल, महाराज शकारि विक्रमादित्य ने ही इसी दिन से सम्वत् प्रारंभ नहीं किया अपितु उस के पूर्व के सभी संवतों का प्रारम्भ भी इसी पावन दिवस से हुआ था। चैत्र मास हमारे पंचांग का प्रथम मास है, उसकी प्रतिपदा हमारे संवत्सर का प्रथम दिवस है। वैदिक काल में चैत्र मास को ही मधु मास कहते थे, क्योंकि इसी मास में वसन्त होता है। आधुनिक नक्षत्र वैज्ञानिकों के अनुसार पूर्ण वसन्त 21 मार्च को होता है। सौभाग्य से हमारा वर्ष प्रतिपदा दिवस भी इस वर्ष 21 मार्च को पड़ रहा है। वसन्त ऋतु को हमारे वैदिक वाङ्मय में 'मुखं ऋतुनाम्' अर्थात् सब से प्रथम ऋतु कहा गया है। इसी दिन जीव सृष्टि का आरम्भ भी माना जाता है। ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रन्थ के अनुसार चैत्रे मासे जगद ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।

अर्थात् चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की।

इसलिए नववर्ष प्रतिपदा का सूर्योदय विश्व का प्रथम सूर्योदय है। उस हिरण्यगर्भ सूर्य के प्रथम दर्शन पर ही हमारे ऋषियों ने उस सवितादेव की महिमा में ऋचाओं का गान किया होगा।

ऋग्वेद के अनुसार संवत्सर के आदिप्रणेता स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ही हैं। मण्डल के 10 के 19 वें सूक्त में कहा है—

ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धारूपसोऽध्यजायत।
ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी।।

अर्थात्, परमेश्वर के आत्मिक तेज से ऋत और सत्य प्रकट हुए, फिर प्रलय की रात्रि हुई फिर सब ओर समुद्र ही फैल गया। पर ईश्वर ने दिन और रात्रि बनाते हुए संवत्सर को जन्म दिया। यजुर्वेद के 27 वें अध्याय में तो स्वयं ईश्वर को ही 'संवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसि' कह कर संवत्सर की वन्दना गाई गई है।

हमारे अलौकिक वाङ्मय में सर्व प्राचीन संवत् कल्पाब्द है, जिसे 1, 97, 29, 49, 059 वर्ष हो चुके हैं। सृष्ट सम्वत् को 1, 95, 58, 85, 059 वर्ष बीत चुके हैं। यह सचमुच बड़े विस्मय का विषय है कि आधुनिक भूगर्भ शास्त्रियों ने जो अभी कल ही भूमि को लगभग 2 अरब वर्ष पुराना बताया है वह हमारे इन प्राचीन सम्वतों के हिसाब से कितना ठीक बैठता है। इसी प्रकार वामन सम्वत्, श्रीराम सम्वत्, कलि सम्वत्, सप्तर्षि सम्वत्सर, विक्रम सम्वत्, मालव सम्वत्, गुप्त सम्वत् तथा शक सम्वत्, प्रायः सभी चैत्र मास की प्रतिपदा से आरम्भ होते हैं। कहीं-कहीं वैशाखी वर्षारंभ माना जाता है। किन्तु अधिकांश प्रचलन प्रतिपदा का ही है।

आज नव संवत्सर का महान् ऐतिहासिक दिवस हमारे सम्मुख जाति की शतकोटि वर्ष पुरानी गाथा को चित्रित कर देता है। आज से 2015 वर्ष पूर्व नृपश्रेष्ठ शकारि विक्रमादित्य ने अपने महान् पराक्रम द्वारा बर्बर शकों को भारत से बाहर खदेड़ कर इस महान् देश की सीमाओं को सुरक्षित बनाया तथा सारे देश को एक चक्रवर्ती शासन में ग्रथित कर इस पुण्य भूमि पर सत्य, न्याय तथा धर्म का आदर्श राज्य स्थापित किया। उस महामहिम महापुरुष ने समस्त प्रजाओं को सुखी बनाया, सब का ऋण पाई-पाई का चुका दिया तथा अपने महान् दान द्वारा दीनों के दारिद्र्य को दूर किया। तब उस महाप्रतापी सम्राट ने विक्रम सम्वत् का प्रणयन

किया। शक्ति एवं शील का वह मूर्तिमान अवतार महाराज विक्रम हमारे हृदय में, हमारी नस-नस में बैठा हुआ आज भी हमें कर्तव्य का आलोक पथ दिखा रहा है। पिछली 20 शताब्दी में जिसके नाम के जादू ने हमें जीवित रखा है क्या हम उसके चलाए हुए सम्वत् को जीवित रख उसके प्रति कृतज्ञता का परिचय देंगे?

उस नववर्ष प्रतिपदा के दिन सम्वत् 1932 (सन् 1875 ई.) में श्रद्धेय ऋषिदयानन्दजी ने, मुंबई में वेद-ज्योति प्रसार के निमित्त प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। इस प्रकार आर्यसमाज के जीवन में भी यह दिन प्रथम सूर्योदय के प्रकाश का दिन है।

इसी परम पावन प्रतिपदा पर सम्वत् 1946 (सन् 1889) को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के जन्मदाता परम पूजनीय डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार का जन्म हुआ। उन तपोनिष्ठ महात्मा ने अपनी आंखों में माँ के वैभव का स्वप्न तथा हृदय में महत्त्वाकांक्षाओं को प्रदीप्त करने वाली स्वदेश भक्ति की चिनगारी लेकर भारत माता का भवितव्य निर्माण करने के हेतु अपना सर्वस्व जीवन राष्ट्र-माता के चरणों में चढ़ा कर राष्ट्रीय चरित्र वाले नवयुवकों का ऐसा महान् संगठन तैयार किया जिस पर भावी भारत को सदा महान् आशा है।

आज इस वर्ष प्रतिपदा के पावन पर्व पर हम संवत्सर-स्वरूप परमेश्वर, संवत्सर संस्थापक महाराज (शकारि) विक्रम, आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द तथा धर्मनिष्ठ डॉ. हेडगेवार के चरणों में कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ समर्पित करते हैं।

भारत का भविष्य

क्या भारत मर जायगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का लोप हो जायेगा और उसके स्थान पर काम रूपी असुर और विलासिता रूपी राक्षसी राज करेगी। धन उसका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता ही उनकी पूजा पद्धति होगी और मानवता उनकी बलि-सामग्री हो जायेगी। ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हो सकती।

—स्वामी विवेकानन्द

विक्रम सम्वत् नववर्ष का दिवस

किसी राष्ट्र के इतिहास में एक नए सम्वत् का आरम्भ होना एक अमर घटना है। विक्रमी सम्वत्, जो ईसा के 57 वर्ष पूर्व महाराजा विक्रमादित्य ने स्थापित किया था, हमारे राष्ट्र के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना है। हमारे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है। हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रकाशपुञ्ज जो इस देश के करोड़ों पुत्रों और पुत्रियों के हृदय में अनन्तकाल तक नया जीवन और स्फूर्ति देता रहेगा।

हिन्दू कैलेण्डर (विक्रम सम्वत्) का नववर्ष दिवस। यह कालगणना (कैलेण्डर) विश्व में सबसे प्राचीन है। हमारी राष्ट्रीय एकता, आन्तरिक शक्ति एवं परिपक्वता का द्योतक है। यह भारत की स्वाधीनता की भावना को दर्शाता है और लगभग 2012 वर्ष पूर्व के भारत की गरिमा, शान्ति, समृद्धि का स्मारक है। यह भारत के गौरवपूर्ण इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है जो उस समय की संस्कृति, कला, साहित्य, वीरता, ज्ञान और सभ्यता का स्मारक है। इसलिए यह उचित है कि विक्रम सम्वत् का नववर्ष दिवस एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाए। सारे देश में खुशी और त्योहार के ढंग से मनाया जाए। विशेषतया जबकि भारत सैकड़ों वर्ष पुरानी दासता की जंजीरों को तोड़कर एक स्वतंत्र गणराज्य के रूप में उभरा है। यह आवश्यक है कि करोड़ों भारतीय यह ऐतिहासिक दिवस, विजय और स्वतंत्रता का पर्व, उस महान् राष्ट्रीय नायक (विक्रमादित्य) का गुणगान करे जिसने आततायी शकों का दमन समाप्त कर भगवान् राम और कृष्ण की भूमि पर राम राज्य की स्थापना की थी।

यह दुःख का विषय है कि हमारे राष्ट्र के रक्षक और विक्रम सम्वत् के संस्थापक विक्रमादित्य का जन्म काल भी व्यर्थ के बौद्धिक विवाद में आ गया है। इतिहासकारों के उनके (राजा विक्रमादित्य) जन्म, वंश, जन्मस्थल आदि के विषय में विभिन्न मत हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं—प्रथम, हम भारतीय अच्छे इतिहासकार नहीं रहे हैं। हमारे राजाओं ने अपने जीवनकाल में अपनी जीवनी नहीं लिखवाई। यह आत्मश्लाघा हो सकती है। यहां के लेखकों ने राजाओं के समय की कुछ घटनाओं को काव्य रूप में लिखा है। किन्तु, कई आवश्यक घटनाओं की भी तिथि आदि अंकित नहीं की है। दूसरा, कुछ लिपियां जो तक्षशिला, नालन्दा,

पाटलीपुत्र, अवंति आदि विश्वविद्यालयों में थी, वे मध्यकालीन मुगल आक्रामकों ने नष्ट कर दी थी। इसके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारों ने भी शरारतपूर्ण एवं गलत ढंग से इतिहास को बिगाड़ा है जिससे राजा विक्रमादित्य, जिन्होंने विक्रमी सम्वत् चलाया था, की छवि धूमिल हुई है। डॉ. टैगोर के अनुसार जो विदेशी इतिहासकार ग्रामीण भारत की झोंपड़ियों से निकलते धुएं को घर में लगी आग समझ लेते हैं, उन इतिहासकारों से इतिहास के यथार्थ-सही ढंग से लिखने की आशा व्यर्थ है। ऐसे प्रेक्षक यहां के समाज का इन्द्रधनुषी जीवन, परम्पराएं, जीवन के दु:ख-सुख समझ नहीं पाते और उनका इतिहास में उचित वर्णन नहीं कर सकते।

इस परिप्रेक्ष्य में विक्रमादित्य का इतिहास भारतीय मस्तिष्क और दृष्टि से भारतीय स्रोतों के आधार पर निर्माण होना चाहिए। इतिहासकारों के लिए मुख्य चुनौती है—क्या ईसा से लगभग 100 वर्ष पूर्व भारत में विक्रमादित्य राजा थे? उनका वंश क्या था? कब से कब तक उन्होंने राज्य किया और उनकी राजधानी कहां थी? इतिहासकार इसे तीन प्रकार से प्रस्तुत करते हैं—

(क) कुछ लेखकों का मत है कि ईसा से एक शताब्दी पूर्व महान् विक्रमादित्य नाम के राजा थे। जिन्होंने उत्तर-पश्चिम से आए आक्रामक शकों को हरा कर भारत से भगा दिया। अपनी विजय के उपलक्ष में उन्होंने विक्रम सम्वत् की स्थापना की होगी। दुर्भाग्यवश राजनैतिक उथल-पुथल के कारण बहुत-सी ऐतिहासिक लिपियां नष्ट हो गई हैं। यह राजा शकारि-शकांतक (शकों का शत्रु) विक्रमादित्य कहलाता था।

(ख) ऐतिहासिक व प्रामाणिक लेखों के अभाव में कुछ इतिहासकार मानते हैं कि आन्ध्रप्रदेश में आंध्र वंश में गंतामी पुत्र शत्करनी (पहली सदी ईसा पूर्व) राजा था। जो पूरे दक्षिण का सम्राट् था। उन्होंने दो अश्वमेध यज्ञ कराए जिससे शक और पल्लव भारत से भाग गए। यह राजा विक्रमादित्य थे। डॉ. जायसवाल के अनुसार यही राजा विक्रमादित्य थे जिन्होंने प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् का आरम्भ किया था।

(ग) कई इतिहासकार मानते हैं कि गुप्त वंश (380-414 ई.) के चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने उज्जैन के शक क्षत्रप को पराजित करने के बाद विक्रमादित्य नाम ले लिया। विक्रमादित्य अर्थात् वीरता के सूर्य ने प्राचीन हिन्दू कालगणना प्रणाली को पुनर्जीवित किया। इसी का नया नाम मलव संवत् या कृत संवत् ही विक्रमी सम्वत् हो गया। प्रख्यात इतिहासकार भंडारकर इस विचारधारा के विशेष समर्थक हैं।

(घ) एक अन्य विचारधारा के अनुसार राजा महावीर यशोवर्मन विक्रमादित्य (7वीं शताब्दी ई.) जिसने मालवा के शक-आक्रामकों को खदेड़ा था, उन्होंने मालव सम्वत् को नया नाम विक्रम सम्वत् दिया।

(ङ) डॉ. भागवत दत्त, जो प्रसिद्ध शोध विद्वान् एवं भारतीय दर्शनवेत्ता हैं, ने लिखा है (प्राचीन भारत का इतिहास नामक पुस्तक में) कि पहली शताब्दी ईसा पूर्व आंध्र राजवंश में जन्मे राजा शुद्रक जिन्हें सर्वप्रथम विदेशी आक्रामकों को खदेड़ने के कारण विक्रमादित्य नाम मिला था। उन्होंने विक्रम सम्वत् की स्थापना की थी। इस विद्वान् इतिहासकार ने विक्रम सम्वत् से पहले के कई अन्य सम्वतों की भी चर्चा की है। महाभारत युद्ध के 36 वर्ष उपरान्त काली सम्वत् (विक्रम सम्वत् से 3066 वर्ष पहले), सप्तर्षि संवत् (पुराना संवत् जो काशमीर, चम्बा और मण्डी के कुछ क्षेत्रों में अभी भी प्रचलित है), व्रट मिहरी संवत् (प्रसिद्ध नक्षत्रशास्त्री व्रट मिहिर द्वारा प्रतिपादित), विक्रम (शुद्रक) सम्वत् (57 वर्ष ईसवी पूर्व), मालव सम्वत्, शक सम्वत्, परद सम्वत् (उत्तरी-पश्चिमी भारत में किसी पार्थ नृप द्वारा स्थापित), शालिवाहन सम्वत्, गुप्त सम्वत् आदि। यह भी लिखा है कि राजा शुद्रक इतने न्यायप्रिय थे कि इतिहासकारों ने इनके विक्रम सम्वत् को कृत सम्वत् (सत्य और न्याय का स्वर्ण युग, सत्य युग) कहा है।

इन तथ्यों के गहन अध्ययन एवं प्रथम और अन्तिम विचारधाराओं से साफ झलकता है कि विक्रम सम्वत् महान् राजा विक्रमादित्य द्वारा 57 वर्ष ईसा पूर्व स्थापित किया गया था। यह कहना कि विक्रम सम्वत् 4 शताब्दी ई. में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा स्थापित या यशोवर्मन द्वारा 7वीं शताब्दी ई. में स्थापित हुआ था, ऐतिहासिक अज्ञानता को दर्शाता है। मलव संवत् का पुनर्नामसंस्करण विक्रम संवत् है—यह विचारधारा भी तर्क पर खरी नहीं उतरती। क्योंकि दोनों सम्वतों का वर्णन इतिहास में गुप्त काल तक आता है। फिर कई प्रमाण भी हैं कि चन्द्रगुप्त जो गुप्त वंश के संस्थापक थे, उन्होंने गुप्त सम्वत् आरम्भ किया जो अधिक समय तक लोकप्रिय नहीं रहा।

इस क्षेत्र के इतिहास का गंभीर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यहां कई राजाओं का उपनाम विक्रमादित्य था। यह वीरता का नाम उन शूरवीरों को मिलता था जो विदेशी आक्रामकों को भारत से मार भगाते थे।

उपरोक्त 5 विक्रमादित्यों के अतिरिक्त पं. ईशदत्त (प्रख्यात शोध विद्वान् व दर्शनशास्त्री) चन्द्रगुप्त-प्रथम (गुप्त वंश) की भी चर्चा करते हैं। जिन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि पाई थी। उन्होंने सशक्त गुप्तवंश की नींव रखी। दिल्ली के पास महरोली में कुतुब के समीप प्रसिद्ध लोहे का खम्भ बनवाया और 313 ई. में गुप्त सम्वत् चलाया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ. ए.एन. घोष भी इस विचारधारा को समर्थन देते हैं।

वनांचल में रामनवमी महोत्सव

राँची एवं समग्र छोटानागपुर का रामनवमी पर्व पर आयोजित झण्डा जुलूस सारे विश्व में अद्वितीय है। भारतीय नृतत्त्वशास्त्र के जनक श्री शरतचन्द्र राय अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उराँव ऑफ छोटानागपुर' में लिखते हैं कि उराँव रामायण महाकाव्य में वर्णित वानर ही हैं। भगवान् राम ने इन्हीं वनवासियों को अपनाकर, इन्हीं की सेना सजा कर लंकाधिपति रावण को धूलि-धूसरित किया था।

चैत्र शुक्ला नवमी भगवान् राम का जन्म दिवस है। इस अवसर को भारत में सर्वत्र विशिष्ट उत्सव के रूप में मनाया जाता है। किन्तु छोटानागपुर, संथाल-परगना के वनवासी बहुल क्षेत्रों में तो रामनवमी का पर्व सोल्लास मनाया जाता है। वासन्ती दुर्गा पूजा के साथ ही रामनवमी के अवसर पर हनुमान्जी की विशेष पूजा की जाती है। चैत्र माह के प्रत्येक मंगलवार को महावीर मन्दिर सजाया जाता है। विभिन्न क्षेत्रों से लोग महावीर पताका के साथ एकत्र हो महावीर मन्दिर पर आंकारोट का प्रसाद चढ़ाते हैं।

राँची से लगे गुमला जिले में गुमला के निकट, टोटो से 10 मील भीतर जंगल में स्थित आंजन ग्राम है जो हनुमान्जी का जन्म स्थान माना जाता है। वहाँ अभी भी अंजनी माता की (गोदी में बालक हनुमान् को लिए हुए) मूर्ति है।

वनवासियों में वानर-गोत्र

छोटानागपुर के वनवासी अभी तक वानर के समान लांगूल लगाकर नृत्य करते हैं। इसे यहाँ की स्थानीय भाषा में 'तुलुंग' कहा जाता है। वनवासियों के अनेक गोत्र हनुमान् तथा वानर नाम के सूचक हैं, जैसे पवनवंशज, तिग्गा, हनुमान्, बजरंगगड़ी, वानरा, बरई, बसोर, मैना, खंगार आदि। सभी का अर्थ वानर ही है। इसी प्रकार सिहंभूम की भुंइयाँ जाति हनुमान्जी का वंशज होने का दावा करती है। वे अपने-आपको-पवनवंशज' ही पुकारते हैं। द्रविड़ वनवासियों में भी हनुमान् नाम प्रचलित है।

हनुमान्जी के बारे में कथा है कि उन्होंने सूर्यलोक जाकर सूर्य से विद्याध्ययन किया। शिक्षा ग्रहणकर वे वापस लौटे और वानरराज सुग्रीव के प्रधानमंत्री बने।

फिर बाद में सुग्रीव से श्रीराम की मैत्री हनुमान्‌जी ने ही करायी। उन्होंने ही लंका जाकर सीताजी का पता लगाया और लंका-दहन भी किया था। राम-रावण युद्ध में इनका प्रधान पराक्रम प्रकट हुआ था।

लंका-विजय के पश्चात् जब श्रीराम अयोध्या वापस आये तब से हनुमान्‌जी उनकी ही सेवा में रहने लगे। परन्तु श्रीराम के साकेत जाते समय हनुमान्‌जी साथ नहीं गये। उन्होंने कहा कि जब तक संसार में रामकथा रहेगी, मैं इसी धरा पर रहूँगा।

द्वापर में ये भीमसेन को मिले थे। महाभारत युद्ध में अर्जुन की पताका पर ये बैठे रहते थे, क्योंकि किरात ने अर्जुन से इनकी मित्रता करा दी थी।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमानश्च विभीषणा।
कृपा परशुरामश्च सप्तैः चिरजीविणा।।

हनुमान्‌जी अमर हैं। जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, ये अदृश्य रूप में उपस्थित होकर कथा का श्रवण करते हैं। ऐसी रामभक्तों की मान्यता है। इनके दो रूप मुख्य हैं। एक लाल वर्ण का और दूसरा कनक भूधराकार शरीर। वैसे उपासना में इनका उग्र, प्रचंड आदि अनेक रूपों का ध्यान वर्णित है।

वनवासी (वानर) जागरण का स्नेह : सूत्रीकरण

भगवान् राम का महानतम कार्य था भारत की विन्ध्यगिरि से नीचे बसने वाली वनवासी जातियों (वानर, ऋक्ष, भल्लूक, निषाद, भील, शबर आदि) को रावण के आसुरी प्रभाव से मुक्त कर भारतीय समाज के साथ एकात्म करना। उन्हीं में से उन्होंने हनुमान् जैसे वीर राष्ट्रभक्त निर्माण किए, जिनको समूची आर्य-जाति आज तक श्रद्धा से शीश नवाती है।

विद्यावान गुनी अति चातुर।
रामकाज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।
राम लखन सीता मन बसिया।।

सीता माता की वनवासियों के प्रति आत्मीयता

वनवास हेतु निकलने के अवसर पर श्रीराम ने सीताजी को वन के कष्टों का वर्णन करते हुए वनगमन से रोकना चाहा—

नर अहार रजनीचर करही। कपट वेषविधि कोटिक करहीं।
लागइ अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहीं जाइ बखानी।।

यह सुन कर सीताजी वनवासी-जनों के प्रति आत्मीयता दर्शाते हुए उत्तर देती हैं—

वनदेवी वनदेव उदारा।
करिहहि सासु ससुर सम सारा।।
कन्द मूल फल अमिय अहारु।
अवध सौंध सत सरिस पहारु।।

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-श्वसुर के समान मेरी सार-संभार करेंगे। कन्द-मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे।

कोल किरात कुरंग विहंगा।
मोहि सब सुखद प्रानपति संगा।।

वनवासियों से प्रेमालाप

भगवान् राम भी वनवासियों पर प्रेम वर्षण करते हुए मधुर वार्तालाप करते हैं—

राम सकल बनचर तब लोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।।

ग्राम्य-नारियाँ भी अपने व्यवहार की भूल-चूक के लिए सीता से क्षमा मांगती हैं—

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।
विलगु न मानब जानि गवाँरी।।

शबरी के जूठे बेरों में अमृत रस

भगवान् द्वारा वनवासी भीलनी का आतिथ्य स्वीकार करना सच्ची मानवता का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग है—

स्याम गौर सुंदर दोऊ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई।।
प्रेम मगन मुख वचन न आवा।
पुनि-पुनि पद सरोज सिरनावा।।
सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे।।

कन्द मूल फल सुरस अति दिए राम कहुं आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।

रामनवमी के अवसर पर आदिवासी वर्ग भी पूरी श्रद्धा-भक्ति से श्रीराम-हनुमान् की पूजा-उपासना सात्त्विक ढंग से करता है। इनका विश्वास है कि ये हमारे देव हैं और हमारा कल्याण करते हैं। कितने ही आदिवासी घरों में महावीर स्थल हैं और वहाँ महावीर जी का छोटा झण्डा वर्षभर फहराता रहता है। प्रत्येक रामनवमी में वे पुराने झण्डे को बदलते हैं। वहाँ प्रतिदिन धूप-गंध जलाते हैं। आदिवासी समाज का विश्वास है कि शुरू से ही राम हमारे हैं। हनुमान् (गाड़ी किली) किली भी इनका होता है। बन्दर हनुमान् किली वाले गौरव का अनुभव करते हैं। ये आदिवासी हनुमान्जी पर 'अंकुरी' भी चढ़ाते हैं। इनका विश्वास है कि हनुमान्जी के शरीर पर सिन्दूर का लेप लगाने से कल्याण होता है। पुरखिन दादी (सीता) खुश होती हैं, क्योंकि इन्होंने ही हनुमान्जी को शृंगार करने का सिन्दूर दिया था। अपना-अपना विश्वास जो है।

आदिवासी गीतों में हनुमान्जी की वीरता की चर्चा भी की गई है। संथाली मुण्डरी, उराँव, बिरहोडी बोलियों-भाषाओं में कितने ही गीत भरे पड़े हैं।

एक ओर साधनों के सम्बन्ध में मानवीय कुशलता और दूसरी ओर लक्ष्यों के सम्बन्ध में मानवी मूर्खता की जो दौड़ चल रही है, हम उसके बीच में हैं। यदि लक्ष्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त मूर्खता बनी रहे, तो उनको हासिल करने के कौशल में हर वृद्धि अशुभकारी ही होगी। यह मानव-जाति अब तक अज्ञानता और अक्षमता के कारण बची रही है, पर यदि मूर्खता के साथ ज्ञान और क्षमता का योग हो जाये, तब तो उसके बचने की कोई निश्चितता नहीं।... निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि विज्ञान के बदौलत मनुष्य का ज्ञान तो बढ़ा पर उस अनुपात में विवेक नहीं बढ़ा। अतः ज्ञान के विकास के साथ-साथ विवेक का बढ़ना आवश्यक है।

—बर्ट्रेंड रसेल

वैशाखी पर्व का इतिहास

महान् भारत भूमि पर निवास करने वाली यह महान् हिन्दू जाति सदा उत्सव प्रिय रही है। इसीलिये इस जाति की वर्ष भर की व्यवहार-चर्या में उत्सव इस प्रकार जड़े हुए हैं जिस प्रकार इस नीले नभ के अनन्त दुकूल में जगमग-जगमग करते हुए तारों की मणियाँ जड़ी हुई हैं। सामान्य रूप से सारे भारत तथा विशेष रूप से पंजाब के लिये एक नवीन आनन्द एवं उत्साह का संदेश ले कर वैशाखी उत्सव आ गया है।

सौर वर्ष का प्रथम दिवस

धरती को प्रकाश देने वाले सूर्य तथा चन्द्रमा, दोनों को भारत की कालगणना में विशेष महत्त्व दिया गया है। भारत का पंचांग सूर्य तथा चन्द्रमा का मिश्रित पंचांग है। सूर्य के अनुसार चलने वाले वर्ष को सौर वर्ष तथा चन्द्रमा के अनुसार चलने वाले वर्ष को चान्द्र वर्ष कहते हैं। जितने समय में धरती सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमा कर लेती है। उसे क्रान्ति-वृत्त कहते हैं। इस क्रान्ति-वृत्त को बारह समान भागों में बांटकर मास गिने जाते हैं। इस प्रकार प्रति मास में एक संक्रांति आती है। सौर मास के प्रथम दिवस को संक्रांति कहते हैं। वैशाखी मेष संक्रांति का पर्व है। इसी प्रकार कर्क संक्रांति और मकर संक्रांति उत्सव भी प्रसिद्ध हैं। इनमें मेष संक्रांति का महत्त्व इसलिए विशेष है क्योंकि इस दिन सौर वर्ष का आरम्भ होता है। चान्द्र वर्ष का आरम्भ वर्षप्रतिपदा (चैत्र शुक्ला प्रतिपदा) से होता है। पंजाब तथा बंगाल में वैशाखी से नव वर्षारम्भ मानने की प्रथा विशेष चलती रही है। इसीलिए अनेकानेक शुभ कर्मों का आरम्भ इसी दिन किया जाता है। बंगाल में लोग इस दिन घर पर सूर्य के रंग का भगवा झंडा फहरा कर नये वर्ष का स्वागत करते हैं तथा व्यापारी नया खाता प्रारम्भ करते हैं। पंजाब में तो वैशाखी उत्सव का स्वागत खूब नाच-गान तथा नृत्य-उत्सवों के साथ किया जाता है। इसीलिए वैशाखी मुख्यतया पंजाबियों का ही उत्सव बन गया है।

तिथियों में अन्तर

भारत में वर्षारम्भ की तिथि में कुछ परिवर्तन होता रहा है। पुरातत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि कभी वसंतोत्सव से ही वर्षारम्भ माना जाता था। यह वसन्तोत्सव माघ

शुक्ला पंचमी के स्थान पर फाल्गुन पूर्णिमा (होली उत्सव) पर पड़ता था। वसन्त को 'मुखं ऋतुनां इह कुसमाकरः'—सब ऋतुओं का मुखिया, सर्वप्रथम ऋतु कहा है। यही वर्ष की पहली ऋतु होती थी। इसी ऋतु के निकट ही वर्षप्रतिपदा (चैत्र शुक्ला एकम) तथा वैशाखी दोनों उत्सव पड़ते हैं। इन दोनों का प्रचलन अभी तक है। चान्द्र मास सौर मास से कुछ छोटा होता है। इसलिए चान्द्र मास की तिथियाँ अधिक शीघ्रता से परिवर्तित होती हैं। पूर्णिमाओं अथवा प्रतिपदाओं के पर्व सदा परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु वैशाखी (वैशाख संक्रांति) सदा 13 अप्रैल को तथा माघी (माघ संक्रांति) सदा 13 जनवरी को आती है। लगभग सौ वर्ष में इन सौर तिथियों में भी एक दिन का अन्तर पड़ जाता है। संवत् 1756 में वैशाखी पर्व पर जब गुरु गोविन्दसिंहजी ने खालसा पंथ की स्थापना की, तब तिथि 10 अप्रैल थी।

ऋतु उत्सव

जहाँ शेष भारत में गन्दम की फसल होली पर पक कर तैयार हो जाती है वहाँ पंजाब में फसलें होली से लगभग 20 दिन पश्चात्, वैशाखी पर, पक कर तैयार होती हैं। इस अवसर पर भारत का अन्नदाता किसान आनन्द से नृत्य करने लगता है। वर्ष की दो फसलों हाड़ी और श्रावणी में से यह हाड़ी ही मुख्य फसल है क्योंकि इसी फसल से प्रजा को वर्ष भर का भोजन प्राप्त होता है। सोने जैसी सुनहली की फसल कटकर घर में आने पर कृषक वर्ष भर के कर-भार से मुक्त हो जाते हैं तथा निश्चित होकर नाचते-गाते हैं—आई वैशाखी गई वैशाखी। पंजाब का भंगड़ा-नृत्य इसी पर्व की खुशियों की तरंगों से सजीव हो उठा है। इस दिन कृषक के रोम-रोम से हर्ष फूटता है। माता अन्नपूर्णा शस्य की देवी हैं। वैशाखी के 3 दिन पश्चात् अन्नपूर्णाष्टमी का पर्व आने वाला है। नवरात्र चल रहे हैं। गृह-गृह में अन्न की देवी के दर्शन प्राप्त हैं। अन्न का पूजन करके यज्ञ भगवान् में नवान्न की आहुति देकर अथवा गली-कूचे की छोटी-छोटी बच्चियों का अन्नपूर्णा के रूप में पूजन कर उन्हें नवान्न की भेंट देकर ही गृहस्थी नए अन्न का प्रयोग करते हैं। वेद की आज्ञा है—'केवलादो भवति केवलाधी।' केवल अपने लिए खाने वाला पाप को ही खाने वाला है।

मध्यकाल में जब स्वयं भारत माता की छाती अपने ही पुत्रों के रक्त से लाल हो गई, जब स्वयं भारत में ही भारतीयता का नाश होने लगा, जब पापी यवनों की तलवार हकीकत गुरु अर्जुन तथा गुरु तेग बहादुर के रक्त से खेलने लगी, उस समय संवत् 1756 में वैशाखी के पुण्य पर्व पर ही स्वयं मेरी आंखों के सामने गुरु गोविन्दसिंह जी ने आनन्दपुर नामक स्थान पर खालसा पन्थ की स्थापना की। सन्त-सेनानियों के इस सम्प्रदाय की स्थापना के समय उन्होंने घोषणा की—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे।
जगे धर्म हिन्दू सभी द्वन्द्व भाजे।

आज पंजाब के दूषित वातावरण में कुछ पथ भ्रष्ट धर्म नेताओं ने गुरु गोविन्दसिंह की असली वाणी 'दशम ग्रन्थ' के पठन-पाठन को गुरुद्वारों में बन्द कर रखा है। इसी कारण आज का सामान्य सिक्ख अपने सम्प्रदाय का वास्तविक हेतु ही नहीं जानता।

गुरुजी हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इतने आतुर थे कि उन्होंने भगवती दुर्गा की उपासना करके एक महान यज्ञ रचाया और वहीं पर खालिस आर्य वीरों का एक सम्प्रदाय निर्माण किया। उनका आह्वान है—

जे आरज तू खालस होवे।
हंसहंस सीस धर्महित खोवे।

स्वयं अपने पिता गुरु तेगबहादुर के बलिदान के विषय में गुरु गोविन्दसिंह लिखते हैं—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका।
कीन्हा बड़ा कलू में साका।
साधन हेतु इति जिन करी।
सीस दिया पर सी न उचरी।

गुरुजी के विवाह के समय उन्होंने स्वयं यज्ञोपवीत पहना हुआ था।

पीत मुनीत उपरना धोती जोती रवि नव छाजे।
पीत अनेऊ मनोबदन ससि पे बिजुरी भ्रांजे।

धर्म रक्षा के लिए गुरुजी शिवा भवानी से प्रार्थना करते हैं—

देहु शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरूं।
न डरुं अरिसे जब जाय लरुं, निश्चय कर अपनी जीत करुं।।

मैंने स्वयं देखा है कि गुरु गोविन्दसिंह की काली माता पर अपार श्रद्धा थी। वह प्रायः गाते थे—

काल तुही, काली तुही, तुही तेग अरुतीर,
तुही निशानी जीतकी, तुही आज जगवीर।

पुनः गुरु गोविन्दसिंह जी शक्ति माता की स्तुति में लिखते हैं—

नमो उग्र दन्ती, अनन्त सवैया,
नमो योग योगेश्वरी योग मैया।
नमो केहरी वाहनी शत्रु हन्ती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढन्ती।

नमो ज्योति ज्वाला तुमै वेद गावैं,
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावैं

औरंगजेब के राज्य में गौ-हत्या देखकर गुरु गोविन्द तड़प उठते थे—

यहीं देह आज्ञा तुर्क गहि खपाऊं
गऊघात का दोख जगसो मिटाऊं
यहीं आस पूरण करौ तुम हमारी।
मिटे कष्ट गौउन छुटे खेद भारी।

गुरु गोविन्दसिंह की उस प्रतिज्ञा को सुनकर मेरी छाती गर्व से फूल उठती थी। अत्याचारी मुगलों के घोर अत्याचार के बावजूद भी गौ रक्षा के लिए ऐसी ज्वलन्त भावना थी। उसकी तुलना में आज स्वतंत्र भारत में एक ब्राह्मण (पं. नेहरू) के राज्य में प्रतिदिन लाखों गऊओं को कत्ल होते देख कर मैं चीख उठती हूँ।

आज एक प्रसिद्ध अकाली नेता कह बैठते हैं, 'मासा-मासा एक हैं, क्या सूअर क्या गाय' और गुरु गोविन्दसिंहजी की गाय के प्रति क्या भावना है? इस बुद्धि-भ्रष्टता के लिये क्या कहूँ?

'मेरे आंखों देखे दृश्य अनेक हैं पर सन् 1919 में 13 अप्रैल (वैशाखी) के दिन मैंने जो कुछ अमृतसर में देखा उसकी स्मृतिमात्र से आज भी आंखों में खून के आंसू उतर आते हैं। अब तक मैं खुशियों का त्योहार थी किन्तु उस दिन से मैं दारुण-व्यथा की कहानी बन गई। प्रथम महायुद्ध में जब अंग्रेजों ने भारतीयों को यूरोप के मोर्चों पर लड़ने के लिए भेजा तो आश्वासन दिया कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वाधीनता दी जाएगी। किन्तु भारतीयों की सारी सेवाओं के बदले उन्हें दिया गया—रौलट ऐक्ट। इस अमानवीय अत्याचार से मैं भी कांप उठी। 6 अप्रैल, 1919 को देश भर में रौलट ऐक्ट के विरुद्ध हड़ताल हुई। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने डॉक्टर सत्यपाल और डा. किचलू को किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया। सारे नगर में रोष फैल गया। उधर महात्मा गांधी पंजाब आ रहे थे। पलवल स्टेशन से उन्हें रोक कर वापस भेज दिया गया। पंजाब भड़क उठा। 10 अप्रैल से मार्शल ला लगा दी गई। 23 अप्रैल को मेरा दिन था। खालसा पंथ का जन्म दिन होने के कारण वैशाखी पर असंख्य लोग अमृतसर आते थे। इसलिए शहर के बीचों-बीच जलियांवाला बाग में 20 हजार स्त्री-पुरुषों की एक विराट् सभा की गई। जनरल डायर एक सेना की टुकड़ी लेकर पहुँच गया। वह साथ में हथियार बंद गाड़ी भी लाया था जो रास्ता तंग होने के कारण अन्दर नहीं जा सकती थी। जालिम डायर ने आते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। लगातार गोलीवर्षा में 1600 कारतूस चलाए गए तथा फायरिंग तभी समाप्त हुई जब कारतूस समाप्त हो गए।

जनता के लिए बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं था। जो तनिक भागना चाहता उसे गोली से उड़ा दिया जाता। एक कुआँ लाशों से भर गया। 400 मुर्दा लाशों तथा 2000 जख्मी प्राणों को सिसकता देख कर मेरे भी अश्रु न रुक सके किन्तु जालिम डायर ने रात्रि भर जख्मियों को न दवा-दारू पहुँचने दिया और न पानी का घूंट। अनेकों सिसकते प्राण और तड़पती आत्माएं खून के कीचड़ में लथपथ पड़ी थीं। उधर शहर भर का बिजली-पानी बन्द कर दिया गया। जनता को कोड़े लगाने के लिए जगह-जगह घेरे बनाए गए। एक स्थान पर तो आने-जाने वाले बड़े-छोटे सभी लोगों को कीचड़ से भरी हुई गली में कीड़े की तरह रेंग कर चलाया जाता था। इस दुर्दशा पर अंग्रेज हंसते और खिल्ली करते। मेरे हृदय पर जैसे छुरियाँ चलती थीं। बंगाल में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पंजाब की यह दुर्दशा सुन कर अपनी सर की उपाधि त्याग दी। उन्होंने लिखा, 'निहत्थे और साधनहीन लोगों पर मानवीय जीवनों को समाप्त करने वाली सरकार ने जिस प्रकार का घोर जुल्म किया है उसके कारण मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं अपने करोड़ों भयग्रस्त देशवासियों के प्रबल विद्रोह को भाषा प्रदान करूं। वह समय आ गया है जब इस घोर अपमान के कारण यह आदर के पदक हमारी लज्जा को और भी अधिक लज्जाजनक बना देते हैं तथा मैं अपने उन देशवासियों की तरफ से जिनके साथ इन्सानियत से गिरा हुआ व्यवहार किया गया है। यही इच्छा करता हूँ कि मैं सरकार द्वारा दी हुई सब विशेष उपाधियों से मुक्त कर दिया जाऊँ।'

जलियांवाला बाग के हत्याकांड के बारे में सुनकर लाला लाजपतराय तुरंत अमरीका से भारत आने के लिए व्याकुल हो उठे किन्तु उन्हें सरकार ने आने की आज्ञा न दी। 7 वर्ष पश्चात् जब वह शेर भारत में पहुँचा तो उसने मुंबई के समुद्र तट पर ही गर्जना की, 'मेरे देश की बहिनो और भाईयो! मैंने विदेश में सुना है कि पंजाब ने जलियांवाला बाग में मार खाई है और वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रांस के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैंड की नाक बचाई थी अपने ही घर के द्वार पर कुत्ते की तरह शिकार किए गए हैं। मैंने यह भी सुना है कि वह हत्यारा डायर अभी तक अपने स्थान पर आनन्द उड़ा रहा है। यदि कोई पंजाबी बच्चा यहाँ है तो वह मुझे बताए कि इसके लिए उसने क्या किया है?'

पंजाब केसरी के शब्द सुनकर मेरा गौरव तथा मैं उस ऐतिहासिक दिन की प्रतीक्षा करने लगी जब कोई भारतमाता का लाल इसका प्रतिशोध लेगा। जलियांवाला बाग के हत्याकांड के 21 वर्ष पश्चात् 23 मार्च, 1940 के दिन लन्दन में जब पंजाब के एक वीर ऊधमसिंह सुनामी ने अपनी गोली से डायर की छाती चीर डाली तभी भारत माता के गौरव की लाज बची तथा मुझ वैशाखी का गौरव भी रक्षित हुआ।

सन् 1959 की वैशाखी तक भारत के नेता 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे लगाते। सन् 1962 में चीन ने एक जोरदार हमला किया। विगत 5 वर्षों से हर साल जब नये साल का सन्देश लेकर मैं आती हूँ तो देखती हूँ कि भारतवासियों के जीते-जी चीन 16000 वर्गमील पर पंजा जमा कर बैठा है, गिरिराज हिमालय की घायल सीमाएं रक्त-नीर बहाकर देश के बेटों को पुकारती है, किन्तु स्वार्थमग्न बेटे न मेरा सन्देश सुनने को उद्यत हैं न हिमालय की पुकारें। आज पुनः मैं दारुण व्यथा से चीत्कार करती हुई आप लोगों से पूछती हूँ कि क्या राष्ट्रीय अपमान का प्रतिशोध लेने वाला, आततायियों को ध्वस्त कर माँ की लाज बचाने कोई शेर जागेगा?

वैशाखी के अनेकानेक महत्त्वों में यह भी गिनने योग्य है कि उत्तर भारत के सुप्रसिद्ध बैंक 'पंजाब नेशनल बैंक की' स्थापना भी इसी वैशाखी के पर्व पर हुई। इसके संस्थापकों में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय प्रमुख थे। भारतीय शासन संविधान की दृष्टि से सन् 1935 का इण्डिया ऐक्ट जिसमें प्रान्तीय सरकारों को पर्याप्त स्वाधीनता प्रदान की गई, सन् 1935 की वैशाखी से लागू किया गया।

आज वैशाखी के पुण्य पावन पर्व पर विशाखा नक्षत्र को नमस्कार, वैशाख मास को नमस्कार, सौर वर्ष के प्रथम दिवस को नमस्कार, सूर्य नारायण को नमस्कार, मेष संक्रांति को नमस्कार, विषुवत् रेखा को नमस्कार, गंदुम की सुनहली खेती को नमस्कार, अन्नदाता कृषक को नमस्कार, अन्नपूर्णा देवी को नमस्कार, नवीन ऋतु को नमस्कार, खालसा पंथ को नमस्कार, दशमेश गुरु को नमस्कार, जलियांवाला बाग के शहीदों को नमस्कार, उनकी स्वातंत्र्य भावना को नमस्कार तथा इन सब की स्मृतियों को जगाने वाले वैशाखी पर्व को नमस्कार।

स्वयं से त्रुटि होने पर आत्मदण्ड की दृष्टि, मित्र से त्रुटि होने पर सहानुभूति की, क्षमा की दृष्टि और शत्रु से त्रुटि होने पर कठोर दण्ड की दृष्टि होनी चाहिए अन्यथा वह आपका सर्वनाश कर देगा।

—संस्कृत कहावत

'शठये शाठये समाचरेत'

—उपनिषद् वचन

बुद्ध जयन्ती

मैं डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, लोकसभा सदस्य को बुद्ध जयन्ती महोत्सव के विषय में उनके विचारों के लिए साधुवाद और बधाई देना चाहता हूँ। कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उनकी मान्यता है कि बुद्ध जयन्ती महोत्सव वास्तव में बुद्ध परिनिर्वाण तिथि के रूप में मनाना चाहिए न कि बुद्ध के जन्म दिन के रूप में।

मैं इन विद्वान् इतिहासकार के विचारों से इन कारणों से सहमत नहीं हूँ—

1. हम महापुरुषों का जन्मदिवस पूरे उल्लास से मनाते हैं न कि उनका मृत्यु-दिवस। हमारी संस्कृति में भी यही प्रथा रही है कि हम सदैव महान् आत्माओं और महापुरुषों के जन्मदिवस ही बड़े उल्लास और हर्ष से मनाते रहे हैं। उनके मृत्यु दिवस या मुहर्रम पर कोई हर्ष-उल्लास नहीं होता।

2. वैशाख की पूर्णिमा केवल बुद्ध भगवान् का निर्वाण दिवस ही नहीं है, इसी दिन उनका जन्म हुआ था और इसी दिन उन्हें परम ज्ञान भी हुआ था।

3. मैं उनके इस तर्क से सहमत नहीं हूँ कि जयन्ती शब्द केवल जन्मदिन से सम्बन्धित है। वास्तव में जयन्ती शब्द संस्कृत के मूल शब्द जय (विजय) से निकला है। जयन्ती का अर्थ है जय या विजय का दिन। हमारा इतिहास दर्शाता है कि हम अनेक सांस्कृतिक विद्वानों और नायकों की जयन्ती मनाते रहे हैं जिन्होंने राष्ट्र का सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान किया। भगवान् बुद्ध सारे विश्व के लिए महान् सांस्कृतिक अग्रदूत रहे इसलिए यह उपयुक्त ही है कि उनका जन्म-दिवस बड़े हर्ष और उल्लास से मनाया जाए।

4. जन्म दिन के लिए उचित शब्द होगा 'जन्म जयन्ती' और मृत्यु दिवस का शब्द 'श्राद्धदिवस' है। महापुरुषों की जयन्ती भी पूरे देश में हर्ष-उल्लास और खुशी से मनायी जाती है किन्तु उनके श्राद्धदिवस केवल उनके परिवार के निकट सदस्य ही मनाते हैं और कहीं पर भी उसे राष्ट्रीय उत्सव नहीं माना जाता। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महर्षि वेदव्यास, वाल्मीकि या शंकराचार्यजी की जयन्ती बड़ी

धूम-धाम से मनायी जाती है, उनके श्राद्धदिवस के बारे में किसी को कोई ज्ञान भी नहीं। हाँ, कुछ बलिदानी वीरों के बलिदान दिवस भी मनाये जाते हैं, जिन्होंने मातृ भूमि के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया।

5. क्या इस वर्ष पड़ने वाला महोत्सव वास्तव में बुद्ध का 2500वाँ जन्म दिन या मृत्यु दिन हैं? यह भी एक ऐतिहासिक शोध का विषय है और डॉ. मुकर्जी के वक्तव्य को पक्का वेदवाक्य नहीं माना जा सकता। कई अन्य इतिहासकारों ने कहा है कि यह 2500वाँ महोत्सव बुद्ध के जन्म या मृत्यु काल से पूरा मेल नहीं खाता है। कोई इतिहासकार नहीं मानते कि बुद्ध का निर्वाण सन् 487 B.C. से पहले हुआ था। इस प्रकार उनका परिनिर्वाण 2443 वर्ष पहले हुआ था न कि 2500 वर्ष पहले जैसी कि डॉ. मुकर्जी की मान्यता है।

6. अब जबकि पूरे विश्व प्रेस ने यह बड़े जोर-शोर से प्रचार कर दिया है कि 2500 वीं बुद्ध जयन्ती 24 मई 1956 को मनाई जाएगी, इन विद्वान् इतिहासकार के विचारों का विशेष लाभ नहीं रहता।

7. यह खेद की बात है कि विश्वव्यापी महापुरुष भगवान् बुद्ध का जन्म वर्ष सही ढंग से ज्ञात नहीं, किन्तु यह सत्य है कि वैशाख पूर्णिमा की रात्रि जब पूरा अन्तरिक्ष और धरती, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित थी, एक प्रकाश की किरण के रूप में दया और करुणा के सागर बालक सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का धरती पर अवतरण हुआ। उन्होंने जन्म के 36 वर्ष बाद वैशाख पूर्णिमा के दिन ही बोध या बुद्धत्व प्राप्त किया। महात्मा बुद्ध जीवन काल के 80 वर्ष पूरे करने पर वैशाख पूर्णिमा के दिन ही अपना शरीर त्याग कर परम ज्योति में विलीन हो गये। लाखों, करोड़ों लोग उन्हें भगवान् अमिताभ 'असीम प्रकाश के स्वामी' के नाम से पूजते हैं।

आइये, हम इस विश्वविख्यात विभूति भगवान् बुद्ध को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करें वैशाख पूर्णिमा के इस महोत्सव को बुद्ध जयंती, बुद्ध पूर्णिमा या बुद्ध रजत शताब्दी के रूप में मनाएँ।

23 मई, 1956

हिन्दुत्व अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है।

—डॉ. राधाकृष्णन्

बंकिमचन्द्र जयन्ती

श्रीमान् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय बंगाली साहित्य के मुकुटमणि थे। जिन्होंने 'वन्दे मातरम्' का गान गाकर असंख्य भारतीयों का हृदय जीत लिया और इस प्रकार महान् ख्याति पाई। विश्व के महान् उपन्यासों में उनकी कृति आनन्दमठ का विशेष स्थान है जिसका प्रभाव कई पीढ़ियों के भारतीय जनमानस पर पड़ा है। बंकिमचन्द्र की गहन निष्ठा और देश भक्ति से उन्हें बहुत उच्च स्थान मिला है।

इस महान् राष्ट्रभक्त कवि की भारतीय स्वाधीनता संघर्ष को 'वन्दे मातरम्' के रूप में एक बड़ी देन रही है। जिसने अनेक राष्ट्रप्रेमियों और स्वतंत्रता सेनानियों को बहुत प्रभावित किया। लाला लाजपतराय और श्री अरविन्द घोष 'वन्दे मातरम्' के आवाहन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 'मराठा' और 'केसरी' समाचार पत्रों के माध्यम से 'वन्दे मातरम्' की भावना को सर्वत्र फैला दिया। शुद्ध राष्ट्र भक्ति के धनी बंकिमचन्द्र को Plutarch के पृष्ठों में बहुत सम्मान मिला है।

इस ऊर्जावान विद्वान् एवं राष्ट्रनिर्माता को श्री अरविन्द घोष ने इन शब्दों में श्रद्धांजलि दी है—'कई लोकनायक, सन्तगण, ऋषि, भारत भूमि पर समय-समय पर अवतरित हुए। इन महान् पुरुषों की शृंखला में हमें एक महामानव को सदा स्मरण करना चाहिए जिसने नव राष्ट्र का अनूठा मंत्र दिया। यह मंत्र था—'वन्दे मातरम्'।

श्री अरविन्द घोष उन्हें ऋषि बंकिमचन्द्र कहकर बुलाते थे। इनका जन्म 27 जून, 1838 में बंगाल में हुआ। इसी वर्ष तीन अन्य महापुरुषों ने भी जन्म लिया जिन्होंने भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर बहुत प्रभाव डाला। यह थे—केशवचन्द्र सेन, हेमचन्द्र बैनर्जी और कृष्णदास पाल।'

बंकिमचन्द्र भारत की स्वाधीनता के विषय में सकारात्मक विचार रखते थे। उनके राष्ट्र भक्ति गीतों में धार्मिक संदेश भरे हुए होते थे। राष्ट्र भक्ति और धार्मिक क्षेत्र में वे श्री अरविन्द घोष के मार्गदर्शक के समान थे, जिन्होंने कालान्तर में 'भारत धर्म', 'राष्ट्रीय स्वाधीनता का अवतार' और 'स्वराज देव' के मंत्र भारतीय समाज को दिए।

वंदे मातरम् गीत में हम भगवद्गीता के कर्मयोग का मधुर संगीतमय चित्रण पाते हैं। इस गान से हमें एक सुन्दर संकल्पना एवं संदेश मिलता है कि भारतमाता का भाल कभी विदेशी क्रूर शक्ति के सम्मुख नहीं झुकेगा और भारत एक समृद्ध, शक्तिशाली राष्ट्र बनेगा।

आइये, हम सब उस युगपुरुष, स्फूर्तिदायक नायक को 'वंदे मातरम्' की कुछ पंक्तियां गाकर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि दें।

वंदे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्। ...वंदे मातरम् ।।1।।

शुभ्र ज्योत्सनां पुलकितदामिनीम्
फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। ...वंदे मातरम् ।।2।।

प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दु विशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्म स्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता....। धर्म ही हमारे तेज, बल, इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है।.... यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़ कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा क्योंकि राष्ट्र का मेरुदण्ड टूट जाएगा, राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जाएगी। इस सबका परिणाम होगा सर्वतोमुखी सत्यानाश।

—स्वामी विवेकानन्द

गुरु पूर्णिमा-एक

हम लोगों ने अभी परम पवित्र भगवद् ध्वज के सामने आकर दक्ष में खड़ा होकर अपने ह्रदय पर हाथ रख करके और नमन करते हुए कुछ पुष्पांजलि चढ़ाई हैं। यह जो हमने कृत्य किया है, इसका भाव क्या है इसका महत्त्व क्या है? कोई भी आदमी कोई कृत्य करता है उस कर्म को यदि वह ह्रदयंगम नहीं करता तो उसका कर्म केवल एक मशीनी कर्म जैसा हो जाता है। जैसे कोई मशीन चल रही है। जैसे चारा काटने की मशीन चल रही है अब उसमें चारा कट रहा है या किसी मनुष्य का हाथ कट रहा है उससे मशीन को क्या? उसी तरह लकड़ी काटने की मशीन चल रही है उसमें लकड़ी कट रही है या लकड़ी काटने वाला आदमी ही फंसकर कट रहा है या मशीन का मालिक ही कट रहा है इसकी मशीन को कोई चिन्ता नहीं। ये जो कर्म होते हैं मशीनी कर्म। मशीन के जैसे कर्म इसमें मनुष्य की कोई चेतना कार्य नहीं करती है। ऐसा करो, ऐसे चढ़ाओ ऐसे नमन करो यह मशीन की तरह होने से दूसरा कोई लाभ नहीं होता है। लाभ तब होता है जब हम शंकर की पिण्डी पर जल चढ़ा रहे हो, और इसलिए चढ़ा रहे हैं कि चाचा ने कहा, भाई ने कहा है कि जल चढ़ाओ और उसमें हमारी श्रद्धा भक्ति का जल न चढ़ता हो तो जल चढ़ाना बेकार है। इसलिए जलधारा के साथ हमारी भावधारा चढ़े, हमारी श्रद्धा चढ़े तभी उसका पुण्य मिलता है, तभी लाभ होता है, तभी हमारा भी विकास हो सकता है। अन्यथा वह व्यर्थ की क्रिया बन जाती है वह फालतू क्रिया बन जाता है। हमारी क्रिया सार्थक क्रिया बने, व्यर्थ की क्रिया न बने और अनर्थ की क्रिया न बने सार्थक क्रिया बने इसके लिये हमें समझना चाहिए हमने क्या किया? क्या करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति ऋषि, मुनि, महात्माओं, संतों, गुरुओं और महापुरुषों की महान देन के रूप में मानी जाती है। इस संस्कृति के व्याख्याता, दीक्षाता, निर्माता कौन है? राजा महाराजा नहीं, धन कुबेर नहीं, इस संस्कृति के व्याख्याता निर्माता खुदा का सेनापति भी नहीं, राजाओं के सेनापति भी नहीं। इस संस्कृति के निर्माता ऋषि-मुनि, संत महात्मा, वितराग पुरुष योगी, महायोगी। जिनके पास अपनी सम्पति के नाम पर कुछ भी नहीं लेकिन सारा राष्ट्र उसके चरणों में नतमस्तक

होता था। गैरवा वस्त्र पहने हुए जंगल में तपस्या करते थे। चक्रवर्ती सम्राट और राजा अपनी चतुरंगिणी सेना सहित सेनापति, मंत्रियों सहित जाकर उनके चरणों में लेटकर साक्षात दण्डवत् करता था। उनके चरणों की धूल को अपने मणि मण्डित मस्तक पर धारण करता था। ये हमारे अर्थ ने धर्म को सदा नमस्कार किया। धर्म ने अर्थ के चरणों में नमस्कार नहीं किया। अर्थ झुकता रहा धर्म के चरणों में। ऋषि के पास धर्म है, राजा के पास अर्थ है, अतः राजा अपने अर्थ वैभव के साथ, अपने साम्राज्य के साथ, अपनी शक्ति के साथ, अपने ऐश्वर्य के साथ जाकर उसकी चरण धूलि लेकर अपने को पुण्यात्मा माना, अपने को भाग्यशाली मानता था कि मेरे पुण्य भाग्य का उदय हुआ कि मैंने इनकी चरण धूलि माथे पर लगायी। हमारे संत, ऋषि मुनि, महात्मा, योगी वितरागी पुरुष वे ही हमारी संस्कृति के उदगाता थे, दीक्षाता थे उन्होंने ही हमें जीवन जीने की कला बतायी। हमने उनको आदर से गुरु नाम दिया। गुरु नाम क्यों दिया? गुरु इसलिए नाम दिया, गुरु का एक अर्थ होता है भारी, जैसे गुरुत्वाकर्षण, मेरे पर गुरुतर भार पड़ा, गुरुतर माने अधिक भारी, गुरु माने भारी। भारी का अर्थ शरीर से भारी, फैले हुए शरीर वालों से नहीं देश में 56 लाख साधु हैं, खूब तोंद फैलाए हुए रहते हैं, कुछ नहीं करते निकम्मे बैठे रहते हैं, उनको खूब पैसा चढ़ता है और खूब खाते हैं। ऐसे भारी लोगों को हम गुरु नहीं मानते। वे गुरु नहीं ढोगी हैं, आडम्बर करते हैं।

राम राज्य में एक न्याय का प्रसंग आया। राम राज्य में कुत्ते को भी न्याय मिलता है। एक कुत्ता आया भगवान राम के दरबार में और एक घण्टी को खींचा। राम ने लक्ष्मण से कहा देखो कौन न्याय की फरियाद लेकर आया है, देखा तो एक कुत्ता घण्टी खींच रहा है। कुत्ते से पूछा तुम्हें क्या कष्ट है। उसने कहा—न मैंने किसी को काटा, न भौंका, न अन्य कोई अपराध किया उसने मुझे निपराध को डण्डा मार दिया उस ब्राह्मण ने। उस ब्राह्मण को बुलाया। इसने भौंका काटा तुम्हें, कोई कष्ट पहुंचाया नहीं तो इसको अकारण बिना अपराध के क्यों डण्डा मारा। जी महाराज मुझसे अपराध हो गया है। तब कुत्ते से पूछा गया कि इसे इस अपराध का क्या दण्ड दिया जाए? तो कुत्ते ने कहा भगवान इसको किसी बड़े मठ का मठाधीश बना दिया जाए। अरे कुत्ते तू कहता है कि बिना अपराध के तुझे कष्ट दिया, डण्डा मारा और तू कहता है इसको मठ का मठाधीश बना दिया जाए। तो कुत्ते ने कहा हां भगवान मैं भी पिछले जन्म में मठाधीश था। मैं भी लोगों का चढ़ावा खा-खाकर तोंद फैलाकर ढोल बन गया, भारी बन गया। शरीर भारी बना लिया। हराम का पैसा किसको पचता है। खूब मालपुआ खा-खाकर के शरीर को भारी बना लेते हैं।

छोटा नागपुर में साधु-संतों की खूब आवश्यकता पड़ती है काम करने के लिए। हमने कुम्भ में, साधु-सम्मेलनों में कहा कुछ साधु-महात्माओं को

छोटा नागपुर में भेजिये। कुल चार सौ-पांच सौ पादरियों ने सारे छोटा नागपुर में खूब आफत मचा रखी है। सारे बिहार में जितने ईसाई है उसमें 95 प्रतिशत ईसाई छोटा नागपुर में है। अगर पांच वर्ष के लिए गंगा-यमुना के तीर्थों को छोड़कर छोटा नागपुर आ जाए 1000-2000 संत तो गंगा-यमुना का कुछ नहीं बिगड़ेगा। पर और पांच वर्ष तक छोटा नागपुर की उपेक्षा की तो यह दूसरा नागालैण्ड बन जाएगा। फिर छाती पिटते रह जाओगे, कुछ नहीं बचेगा। इसलिए साधुओं को भेजो। उन्होंने कुछ साधुओं से, अखाड़ों से बात की। उन्होंने कहा क्या कहे साधु भी इतने भोगी बन गए हैं, इतने चटलास वाले बन गए हैं कि वे पूछते हैं वहां क्या काली रोटी धोली दाल मिलेगी। काली रोटी क्या? अजी मालपुओं को काली रोटी कहते हैं, खीर को धोली दाल कहते हैं। काली रोटी धोली दाल वाले पेट फैलाये, तोंद फैलाए मठाधीश है। चरण पूजा-पूजा करके समाज का बहुत पैसा खा जाते हैं, नशा करते चरस, भांग, अफीम, फिर व्यभिचार भी करते हैं, क्या नहीं करते। बड़े-बड़े केश लगे हुए हैं। बहुत अनर्थ करते हैं। आए दिन सिर फुटबोल करते हैं। कुत्ते ने कहा मैं दूसरों का दान का पैसा खा-खाकर के इतना पतित हुआ कि मुझे कुत्ते की योनि मिली और मुझे नाली का विष्ठा खाना पड़ता है। इसको भी मठाधीश बना दीजिए, यह भी दान का पैसा खाकर पतित होकर कुत्ता बनेगा, नाली का विष्ठा खायेगा फिर इसको कोई डण्डा मारेगा तब इसको समझ में आएगा अकारण किसी को डण्डा मारकर किसी को कितना कष्ट दिया।

गुरु का मतलब यह नहीं तोंद फैला ले, चार-छह चेले उठाकर लेते-फिरे। देखिए कुम्भ में। बड़े-बड़े गुरुओं से उठा नहीं जाता, चेले थाम कर चलते हैं। वाह रे गुरु। गुरु का मतलब जो ज्ञान में भारी हो, ज्ञान जिसके पास अधिक हो, ज्यादा हो वह तो गुरु गुरु है। शरीर का भारी गुरु गुरु नहीं होता। जो गुरुतर ज्ञान का स्वामी हो। गुरु हमने कहा क्यों? गुरु दो शब्दों से बना है गु+रु। गु का अर्थ है अंधकार और रु का अर्थ है प्रकाश। जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए वह गुरु है। अंधकार क्या है? कौन-सा अज्ञान है। वेद कहता है 'असतो मा सद्गमय' हमें असत् से सत् की ओर ले जओ? तमसो मा ज्योतिर्गमय, हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ। मृत्योर मा अमृतं गमयेति। मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ। अज्ञान तीन प्रकार का है। एक तो अज्ञान में हम बुराई करते हैं, पापाचार करते हैं। असत् कर्म कर बैठते हैं। अतः असत् से सत् की ओर जाना अज्ञान से ज्ञान की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर जाना। फिर अंधेरे में आप अपने आपको भी नहीं जानते। इतना अंधेरा है, इतना अंधेरा है कि अपने आपको भी नहीं देख सकते। ऐसे अज्ञान से आत्मज्ञान की ओर जाना। तमस से ज्योति की ओर ले

जाना। यह गुरु का काम है। फिर हम इस मर्त्य लोक में जहां पर मृत्यु का चक्र चला हुआ है—

पुनरपि जननं पुनररि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे खलुदुस्तारे कृपयापोर पाहि मुरारे।।

फिर जन्म लेना, फिर मरना, फिर मां के कोख में आना मां को क्लेश देना। अपने क्लेश भोगना, रोते-रोते जन्म लेना, जीवनभर रोना, मरते-मरते फिर रोना और बीस-पचास को रूलाकर चले जाना। यह धंधा बार-बार चलते रहना, चौरासी लाख बार आग में झोके जाना, चौरासी लाख बार यम की मार खाना चौरासी लाख बार फांसी खाना, फांसी के साथ आग में झोका जाना यह जो बार-बार चलता रहता है यह है मर्त्यलोक। गुरु नानक देव कहते हैं—लाख शीश तेने दिए यमराज के भेंट अरे यमराज को तूने चौरासी लाख शीश तूने दे दिए।

लाख शीश तेने दियो यमराज को भेंट।
नारायण के हेत एक शीश भी न दिया।।

नारायण के लिए एक भी शीश नहीं दिया। अरे जालिम काल जो बार-बार तेरा शीश काटता है, आग में झोकता है उसको तो चौरासी लाख शीश दे दिए पर परब्रह्म परमेश्वर को एक भी शीश नहीं दिया। एक शीश दे देता तो मुक्त हो जाता। इसलिए कहा मृत्योर् मा अमृतं गमयेति। मृत्यु से अमृतत्त्व की ओर ले जाओ।

मनुष्य में अज्ञान फैलाने वाले दो बड़े कारण हैं—एक है अहंता और एक है ममता। अंहता क्या है? अपने अंहम को ठीक न समझ कर शरीर को, तन को, बुद्धि को, भोगविलास को, वैभव को अहम् माना। और अहंकार किया कि मैं इतना बलवान हूं, मैं सुन्दर हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं इतना बड़ा कलाकार हूं, मेरे पास इतना धन है, मैं सेठ हूं, मेरा उससे यह सम्बन्ध है, बहुत बातें करता है अहंकार बहुत अहंकार।

दूसरा ममता—ममता क्या है? यह मेरा, यह मेरा, यह मेरा। अहंता को कहते हैं False I असली मैं को भूलकर गलत चीज को मैं कह रहा है। और जो मेरा नहीं उसको मेरा कहना False My ममता है। अहंता और ममता माया के दो दलाल है। इन्होंने बांधे रखा है दुनिया को। रामकृष्ण परमहंस देव कहते हैं भगवान दो बार हंसता है। भक्त ने पूछा दो बार कब हंसता है? जब डॉक्टर रोगी को देखकर कहता है आप चिन्ता मत करे, मैं गारन्टी से कहता हूं मैं इसको बचा लूंगा। तब भगवान कहते हैं अरे डॉक्टर तेरे प्राण निकलने लगे तो बचा लेना अपने-आपको। तू किसी को बचा सकता है। अपने तो कच्ची सांस की डोरी पर जी रहे हो और कहता है मैं उसको बचा लूंगा। डॉ. अहंकार करता है

मैं बचा लूंगा अहंता। और जब दो भाई रस्सी लेकर जमीन को नापते हैं और कहते हैं यह जमीन तेरी है, यह मेरी है। तब भगवान हंसते है अरे मूर्ख तू धरती को बांट रहे हो। तन की मिट्टी पर तो तेरा अधिकार ही नहीं है तन की मिट्टी साथ ले जा सकते नहीं, तन की मिट्टी तो छीन जायेगी और धरती के करोड़ों मन की मिट्टी का बोझा ढो रहे हैं। यह जमीन तेरी या मेरी है। किसकी है? एक कोड़ी लेकर आए नहीं, एक कौड़ी लेकर जा सकते नहीं। जिस तन को रोज संवारते हो, इसको ले जाओगे साथ। नहला धुलाकर, खिला-पिलाकर सजाते हो, ले जाओंगे साथ, नहीं। मैं विनोद में कहता हूं मानव शरीर भी H.E.C. है। H.E.C. तो एशिया का सबसे बड़ा इंजीनियरिंग का कारखाना है। H.E.C. का मतलब क्या है? दुनिया के बड़े-बड़े खेत-खलिहान चाट गए, ये पापी पेट और बढ़िया से बढ़िया खाओ पर सबको बनाओ मलवा। शरीर Heavy Eating corporation खाने में थोड़ी देर होने से हाय तबका मचा देता है। करोड़ों रुपयों की मिठाई हलवा-पूरी सब चाट जाता है, कुछ छोड़ता नहीं। और सब चाटकर के और अमृत जैसा पदार्थ खाता है और गन्दी से गन्दी वस्तु Produce करता है, सारे संसार को मल से गंदा करता है। देश में कितने बड़े-बड़े कारखाने हैं जो बहुत श्रेष्ठ उत्पादन करते हैं पर यह मानव शरीर क्या Production करता है? मल से सारे संसार को भर देता है। इसलिए भगवान कहते हैं तन की मिट्टी पर तो तेरा अधिकार है नहीं और धरती की मिट्टी पर अधिकार जमा रहे हैं। तन को पालने के लिए क्या नहीं किया उस पर तो तेरा अधिकार नहीं और धरती पर अधिकार जमाते हो मेरा, मेरा। कुछ मेरा नहीं है।

इसलिए एक है अपने स्वरूप के बारे में अज्ञान कि मैं कौन हूँ उसके कारण गलत अहंम् को मैं समझकर अहंकार कर रहा हूं।

दूसरा है उस गलत मैं के सम्बन्ध के कारण वस्तुओं को मेरी-मेरी कह रहा है। गलत मैं से गलत मेरा उत्पन्न हो रहा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं तू सारी दुनिया को मेरी-मेरी कह रहा है तू अपना नाम तो बता तेरा नाम क्या है? नाम तो बता? अपना नाम तो नहीं बता सकता। सब लोग अपना परिचय मैं यह, मैं हरवंशलाल। मैं रामलाल। जन्म से नाम की पट्टी लगी थी क्या? क्या नाम साथ लेकर आए थे? जन्म से तो पट्टी नहीं लगी थी। शरीर रूपी बोतल किसी और Factory में बनती है और नाम के लेबल किसी और Factory में बनते हैं। नाम तेरा झूठा है, नाम तेरा कल्पित है। तू तेरा परिचय बता। नाम तेरा होता तो आते समय तेरे शरीर में चिपका हुआ होता। और तेरे साथ जाता। नाम कल्पित है चार आदमी मिलकर नाम रख देते हैं। घर के कुत्ते का नाम मोती रख दिया। मोती-मोती। नाम जन्मजात नहीं है। नाम कल्पित

है। एक व्यक्ति के अनेक नाम और अनेक व्यक्तियों का एक नाम। और नाम परिवर्तनशील है। रांची एक्सप्रेस एक लाइन छाप दे तो नाम बदल जाता। असली नाम बता दे। तेरा कोई नाम नहीं है। इसलिए मनुष्य अहंकार में है। बहुत अहंकार करता है। मैं-मैं बहुत अहंकार है। और जब कहता है मेरा-मेरा तब भी बहुत बड़ा अहंकार है। मैं और मेरा के अहंकार से, अहंता और ममता के अहंकार से बचा दे, छुड़ा दे, जो सच्चे स्वरूप की उपलब्धि करा दे, सच्ची मालकियत बता दे, वही गुरु है। वही गुरु है जो अहंकार से छुड़ा दे।

स्वामी रामतीर्थ कहते हैं जो आदमी आपकी सम्पति लूट लेवे। सम्पति छीन लेवे, सम्पति पर डाका डाल लेवे वह डाकू है। लेकिन जो मालकियत की भावना को ही उड़ा देवे, मैं मालिक नहीं तू मालिक है वह गुरु है। जो आपकी सम्पति छीने, मालकियत छीने वह डाकू है और जो मालकियत की भावना छीन लेवे वह गुरु।

हम मालिक नहीं है मालिक कोई और है। हम तो झूठ से, पाखण्ड से, अज्ञान से मालिक बन बैठे हैं। मालिक तो हम नहीं है। गुरु नानकदेवजी एक बार यात्रा पर जाने वाले थे अरब की ओर मक्का मदीना की ओर। मुलतान में बड़ा भारी सेठ था, राजा ही था। और बड़ा कंजूस। उसके पास गये। मैं अरब की यात्रा पर जा रहा हूं। अब तक पैदल चलकर आया हूं। अब पकड़ूंगा जहाज। पराया देश है, एक अमानत छोड़ जाता हूं तेरे पास। वे जानते थे राजा बड़ा कंजूस है। जनता की भलाई के लिए कुछ नहीं करता। जनता ने यह शिकायत की थी। अपनी अमानत छोड़ जाता हूं आते वक्त ले जाऊंगा। क्या अमानत है? बस छोटी-सी सूई है, इसे रख लो, जाते वक्त ले लूंगा। राजा बड़ा हैरान हुआ कि कौन-सी अमानत छोड़ रहा है, उसने कहा गुरुजी इतनी छोटी सूई है कहां तक सम्हालता रहूंगा। नहीं-नहीं इसको सम्हाल कर रखो। उसने कहा गुरुजी आपका शरीर वृद्ध हो गया है, मलेच्छों का देश है न जाने यह शरीर लौटकर आए न आए, मैं इसको कहां तक बचाता रहूंगा। अगर आपका शरीर छूट जाए तो अगले जन्म में ले लेंगे या परलोक में ले लूंगा। तो क्या इसे परलोक में ढोकर ले जाऊंगा? क्यों नहीं तू जब तेरे पास लाखों रुपये का सामान, अरबों रुपये हैं, वैभव है। तू जब इतना ढोकर ले जाएगा तब मेरी छोटी-सी सूई भी ले जाना। तब वह समझ गया, चरणों में गिर गया। यह धन तो मेरा नहीं है। धन मेरा होता तो लेकर आता, धन मेरा होता तो लेकर जाता। लेकर कोई नहीं आया, एक छदाम लेकर जा नहीं सकता। किसलिए कहते हैं मेरा-मेरा। इसको कहते हैं स्वान्ता। अपना एक झूठा स्व मान लिया शरीर को और नाम को और उसके लिए जो अर्थ जोड़ लिया उसको कहा मेरा-मेरा। यह स्वार्थमय जीवन। स्वार्थों जीवन ऐसा होता है मेरा-मेरा।

यह स्वार्थमय जीवन। स्वार्थी जीवन ऐसा होता है मेरा-मेरा इसलिए ईशावस्य उपनिषद में कहा—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मागृधः कस्य स्विद्धनम्।।

यह सारा जगत् ईश्वर से अच्छादित है, ईश्वर का है, ईश्वर का बनाया हुआ है ईश्वर का रचा हुआ है, ईश्वर इसका स्वामी है और सब ईश्वर में है और कण-कण में भी ईश्वर समाया हुआ है। और इस प्रकार यह सारा धन ईश्वर का है। इसलिए संसार की सब वस्तुओं को उसके मालिक को समर्पित करके भोगो। त्वदीयं वस्तु गोविन्दम् तुम्भमये समर्पये। हे भगवान मैं आपकी दी वस्तु को आपके चरणों में समर्पित करता हूं। इस नम्रता के साथ भगवान को समर्पित करके यज्ञ भावना के साथ भगवान के प्रसाद के रूप में भोगो और अन्य के धन की ओर गृध की दृष्टि मत रखो।

महात्मा गांधीजी कहते हैं यदि हिन्दू धर्म के सब ग्रन्थ नष्ट हो जाए। नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय में सब जल जाए। समुद्र में गिर जाए, सब नष्ट हो जाए, कुछ न बचे बस केवल ईशावास्य का पहला मंत्र बच जाए तो समझना हिन्दू धर्म का सब कुछ बच गया। तो इतना महत्त्व इस मंत्र का है। इस मंत्र में सबकुछ आ गया।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम एवं महिमा हमने सुनी है। तो उनके दादा के जीवन में मोड़ लाने वाली और उनको ऋषि तुल्य महापुरुष बनाने वाली घटना क्या है? उनके दादा द्वारका दास टैगोर वे फेशनेबुल डेडी थे। कोट पेण्ट टाई लगाने वाले यूरोप की सभ्यता में पले हुए पश्चिम के सारे हाव-भाव पाले हुए थे। ऐसे थे रवीन्द्रनाथ टैगोर के दादा द्वारका दास वे कहते हैं हिन्दुस्तान के उद्धार का एक ही रास्ता है? क्या रास्ता है? हिन्दुस्तान को यूरोप की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। यूरोप की नकल करेगा तब इसका उद्धार होगा नहीं तो इसका उद्धार नहीं हो सकता। इतना ज्यादा पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित थे और भारत भारतीय से कोई प्रेम नहीं था, अचानक उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, वे उदास थे, निराश थे। अग्नि संस्कार करके लौटकर के आए तो कलकता के भवन के बरामदे में टहल रह थे। राजा थे। घर बड़ा साफ-सुथरा रहता था। उनके यहां कोई कूड़ा-कचरा का प्रश्न ही नहीं था, बहुत सफाई रहती थी। अचानक हवा से उड़ कर एक कागज का पन्ना आ गया। उनको लगा कि कहां का पन्ना आ गया। आगे जाकर टहलते हुए कागज के पन्ने को पकड़ने लगे। पन्ने को पकड़ने गए तो हवा आयी तो और उड़ गया। तो और आगे बढ़े पकड़ने के लिए तो फिर उड़ गया। इस बार झपटकर कागज के पन्ने को पकड़

ही लिया। और उसको पढ़ने लगे। तो बस इससे उनके जीवन की धारा बदल गई। तो उसमें ईशावास्य का प्रथम मंत्र छपा हुआ था। तो किसी अखबार ने या पुस्तक वाले ने उसे रद्दी में डाल दिया होगा। बस उसने उनके जीवन को बदलना था। पढ़ा उसको—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मागृधः कस्य स्विद्धनम्।।

सारा विश्व ईश्वर से आविष्ट है, ईश्वर का रचा हुआ है, सारे जगत में ईश्वर व्याप्त है, सारा जगत ईश्वर में है। इसलिये सब कुछ प्रभु का मान कर प्रभु को समर्पित करके उपभोग करना चाहिये। यह मेरा, इस भाव से नहीं सब कुछ परमेश्वर का है इस भाव से उपयोग करना चाहिये। और किसी के धन के प्रति लोभ की दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। बस यह पढ़ते ही उन्होंने बड़ी-बड़ी सम्पत्तियां दान में दे दी। उन्होंने विदेशी कोर्ट पेन्ट उतार कर धोती धारण कर ली। उनके जीवन में जो परिवर्तन आया। उसकी छाप पड़ी उनके पुत्र महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर वे महर्षि बन गये। उस महर्षि के घर आये रवीन्द्रनाथ ठाकुर और विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस श्लोक की महिमा में जो लिखा है उसे आप सोने से भी नहीं तोल सकते? इसने मेरे पूरे परिवार को बदल दिया है।

मेरा कहना ही सबसे बड़ा अपराध है, बहुत बड़ा अपराध है। मानव सेवा संघ के संस्थापक स्वामी शरणानन्दजी महाराज के पास एक सज्जन आये। जो भोजन मंत्र को एक कार्ड में छापकर प्रचार करना चाहते थे। उन्हें अपने छपाने का बड़ा अहंकार था। भोजन मंत्र जो इस प्रकार है—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्मयेव समर्पये।
गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर।।

उन्होंने स्वामी शरणानन्दजी को दिखाया। देखिये स्वामीजी कितना अच्छा छपा है वह अपनी छपाई का प्रदर्शन करना चाहते थे। अपने छापने का अहंकार का दिखावा चाहते थे। उन्होंने प्रेम से कान खीचकर क्या बदमाश क्या लिखा है? हे भगवान आपकी वस्तु आपको समर्पित करता हूँ, इसमें बड़ा अहंकार दिखा रहा है, अपनी बड़ाई दिखा रहा है। बता बेईमान आज तक जो मेरी वस्तु थी याने मेरा रुपया चुराकर ले गया और अनेक वर्षों तक अपने बैंक में रखे रहा। फिर अन्त में कहा अच्छा स्वामीजी आपकी रकम आपको वापस करता हूँ। आपका पैसा आपको वापस करता हूँ। इसमें तेरी बड़ाई है या तेरा अपराध है? इतने समय तक तुझे अक्ल नहीं आई कि मैं भगवान का खा रहा हूँ। इतने दिन भगवान का खाता रहा चाटता रहा और कहता रहा अपना खाता, अपना खाता हूँ

और आज कार्ड छाप दिया तो अहंकार दिखाता है। बता हम रोम-रोम में भगवान के ऋणी हैं। हमें प्रत्येक पल में भगवान हमें प्राण दे रहे हैं उनकी कृपा से हम जी रहे हैं। 21600 बार हमारा श्वास बाहर निकलता है और 4 सेकण्ड से 5 में लौटकर आता है। प्राण का निकल जाना मृत्यु है और प्राण का लौट आना जीवन है। तो रोज 21600 बार जो हम मरते हैं। और 21600 बार भगवान हमको रोज नया जीवन देते हैं। उस भगवान का एहसान, उस भगवान का ऋण तुम कभी चुका सकते हो? तो क्या भगवान को अहंकार जताओगे कि हे भगवान आपकी वस्तु आपको चढ़ा रहे हैं। अरे भगवान के आगे रोओ हे भगवान हम अपराधी हैं हमें अक्ल नहीं थी हम अब तक तेरा खाते-पीते रहे युगों तक तेरे को समर्पित नहीं किया हम लज्जित है। सब आपका है। हमारा नहीं सब आपका है। हमारा नहीं ऐसी भावना रखो।

कहते हैं वेद में इदम् न मम मंत्र 32 बार दोहराया जाता है। हे जात वेदा अग्नि देवता हे मेरे जन्म के साक्षी अग्नि देवता, हे वेदों के प्रकाशक अग्नि देवता, हे ज्योति स्वरूप परमेश्वर यह जो हवि में आपको समर्पित कर रहा हूँ यह आपकी ही है। 'इदम् न मम्' देते समय तुझे अहंकार हो गया है कि मैं दे रहा हूँ। उसका देना सब वृथा हो गया, उसका देना नष्ट हो गया। देना उसका अहंकार हो गया, देना उसका अपने-आप के लिये हाथ की हथकड़ी हो गयी। पांव की डण्डाबेड़ी, गले की फांसी हो गई। इनका देना देना नहीं। जिसने अहंकार करके दिया उसने क्या दिया? अहंकार करके मैं दिया। 'इदम् न मम्' मेरा है ही नहीं। है ही प्रभु का। इसलिये जो नम्रतापूर्वक आंखों में अश्रु जल भरके समर्पित करता है 'इदम् न मम्' यह यज्ञ भावना है।

अब्दुल रहीम खानखाना, बैरम खा का बेटा, अकबर का सेनापति तथा उसकी 'राज्यसभा के नवरत्न मण्डल के उज्जवल रत्न। मुगल का काल अत्याचार का काल था। बंगलादेश की विजय के बाद दिसम्बर में कलकत्ता में गुरुगोविन्दसिंह पर कार्यक्रम था। बहुत बड़ा गुरुद्वारा है उसमें लेफ्टिनेंट जनरल अरोड़ा को बुलाया गया। उसका सम्मान किया गया उसे तलवार सरोपा भेंट की गयी और वह सैनिकों की परिवार के लिये राशि भेंट की गयी। गुरुगोविन्द व्याख्यान के लिये मुझे बुलाया गया था। वे आये थे अध्यक्षता करने। हमारे अन्दर जो श्रद्धा का भाव था वह उछालकर बांट दिया। लोगों को सुख हुआ, उनको भी सुख हुआ, मुझे भी सुख हुआ। उन्होंने कहा बंगला देश की यात्रा पर ढाका जा रही है एक गाड़ी। सब पत्रकार जा रहे हैं आप भी हमारे साथ चले। जसलौर में पहुँचे। तीन सौ युवा हिन्दी लड़कियों की लाश उलफ में पड़ी थी। उनको कई मासों से पाकिस्तानी दरिंदे भोग रहे थे। उनके साथ पापाचार करते

थे, व्यभिचार करते थे। ये लोकलाज से अपने को बचाने के लिये फांसियां खा रही थी। फांसी खाकर मर रही थी। हम इस तरह जी नहीं सकते। उन्होंने सोचा फांसी लगाने के लिये चुनड़ी है, दुपट्टा है, साड़ी है, इसलिये उन्होंने दुपट्टा छीन लिया। तब उन्होंने अपनी कुंचकी जो छाती बांधने का वस्त्र होता है उससे फांसी खानी प्रारम्भ की। एक लकड़ी उधर से पकड़ी एक लकड़ी इधर से पकड़ी। तब उन्होंने कुंचीकी उतार ली। तब उन्होंने सोचा बड़ी विचित्र स्थिति है तब उन्होंने अपनी बेणी के बालों से ही फांसी खानी शुरू की। तब सिर मुड़ दिये गये और भोगते रहे। जिस दिन जसलौर का पतन हुआ, तीन सौ लड़कियों को खड़ी करके गोली मार दी गयी। ये पाप दरिन्दे करते रहे। इसलिये गुरु नानक देव रो पड़े। गुरु नानक देव ने बावर के आक्रमण का बड़ा मार्मिक और हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। पाप की बारात लेकर काबुल से धावा बोल दिया है। किसी की सुन्दर बेटी देखी तो छीन ली, किसी के पास धन देखा तो छीन लिया, पाप की बारात लेकर बावर आया है। उसके बारात में सब पापी है और बावर दूल्हा होने से महापापी है। जो सबको जर्बदस्ती लूटता है। खुरासान खसनाना किया हिन्दुस्तान कराहाँ इतनी मार पड़ी।

हे भगवान उस खुरासान को तुम हिन्दुस्तान का बादशाह बना दिया। तुमने मुगल को हिन्दुस्तान का खसम बना दिया। हिन्दुस्तान का मालिक खुरासन हो गया। धर्मात्मा हिन्दुस्तान को डरा दिया। झूठ का साम्राज्य हो गया। राजा कसाई बन गया। धर्मात्मा हिन्दुस्तान और पापी खुरासन उस पर जा बैठा। इतनी मार पड़ी। लोग रोने लगे। बच्चे चीत्कार करने लगे। क्या भगवान आपको दर्द नहीं है। सारी जनता रो रही है। हे जनता जनार्दन जनता रोती है, हे जनार्दन आपको दुःख नहीं होता है क्या? भगवान को उलाहना देते हैं। आप सोच सकते हैं एक संत जिसके एक ओर बाला मरदाना है, जो मुसलमान है। उनमें हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेद नहीं है। बस देश की दुर्गति देखकर, समाज पर इतना भयंकर अत्याचार देखकर संत चुप कैसे रह सकता है? इनका सारा का सारा इतिहास इसी प्रकार के अत्याचारों का इतिहास रहा है। इसलिये बाबर के साथ आया बैरम खां उसका अंगरक्षक। पर बैरम खां जो भारत में आगरा पहुंचा तब आगरा मैं उसके एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम था अब्दुल रहीम खा। भारत में जन्म लिया तो भारत भक्त हो गया। भारतीय संस्कृति के प्रेमी बन गया और एक गंग कवि था। उस गंग कवि के कवित्व पर मोहित होकर 36 हजार मोहरे उसको दान कर दी। तब गंग कवि ने कहा—

सीखे कहां जवाब जू ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचो उठे, त्यों त्यों नीचे नैन।।

हे जनाब जी! ऐसी देनी आप कहाँ से सीखा है देते हुये ज्यों-ज्यों आपका हाथ ऊँचा उठता है, आपकी आंखें नीचे-नीचे झुकती जाती है। रहीम तो भारतीय संस्कृति का भक्त था—

देनहार कोई और है, भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पै करैं, तातें नीचे नैन।।

असली दाता कोई और है जो दिन-रात दे रहा है बिना मांगे दे रहा है अटूट खजाना खोल दिया है। क्या नहीं देता? सबकुछ वही दे रहा है। पर लोग भ्रांति से चपरासी को, नौकर को, सेवक को दाता समझ रहे हैं। इसलिये मैं लज्जित हूँ आँख नीचे किये हुए कि हाय! असली दाता कोई और हैं। इसमें मेरे मालिक का अपमान हो जायेगा। इसलिये लज्जा से आँखें नीची है। असली दाता कोई और है उसे स्मरण कर यह है प्रपण भक्ति। मेरा नहीं, मेरा नहीं, मेरा नहीं। यह जो भाव है इससे विश्व कल्याण होता है। इससे इस सारे विश्व के लिये समर्पण करते हैं। अपनी शरीर की छोटी इकाई से उठकर बड़ी समाज की इकाई के लिये राष्ट्र की ईकाई के लिये समर्पित करना एक यज्ञ है। लेकिन इस यज्ञ में सबसे बड़ी बाधा क्या है? हमने गलत मैं को पकड़ लिया है और गलत मैं के कारण गलत मेरा को पकड़ लिया है। मैं और मेरा ने हमें बांध रखा है इस कारण हम स्वार्थी बन गए हैं। स्वार्थ जो है अपने लिये या अधिक से अधिक परिवार के लिये जीना? यथार्थ या परमार्थ जीवन है समाज के लिये, राष्ट्र के लिये जीवन जीना। मानवता के मंगल के लिये जीवन जीना यह यथार्थ जीवन है। जब कहो मेरा तब स्वार्थ जब कहो तेरा तब यथार्थ। स्वार्थ और यथार्थ में बस इतना ही अन्तर है। मेरा कहने से हम बंध जाते हैं और तेरा कहने से मुक्त हो जाते हैं। शास्त्रों ने कहा—

द्वपदे बंध मोक्षाय
निर्ममेति ममेति च
ममेति बंधते जन्तु
निर्ममेति मुच्यते

दो शब्दों में बंध और मोक्ष का फैसला करो कौन बंधा है और कौन मुक्त है। दो शब्दों से अधिक नहीं कहना है। वे दो शब्द क्या है जी? निर्ममेति ममेति च ममेति बन्धते जन्तु। ममेति माने यह मेरा है। ममेति क्या है जो बंधन में है। उसको हथकड़ी लगी है। यह मेरा मकान, यह दुकान, यह मेरा जमीन, यह मेरा बैंक बैलेंस तो समझना लाखों मन के नीचे दबा हुआ है बंधा हुआ है। उसके उत्थान में बहुत समय लगेगा। क्योंकि ममेति बंध्यते जन्तु। ममेति से बंध जाता है और जब कहता है मेरा नहीं है, मेरा नहीं कहने का अर्थ यह नहीं कि हम अर्थ का दुरुपयोग करें।

अर्थ न अनर्थ होना चाहिये अर्थ न व्यर्थ होना चाहिये, अर्थ तो धर्म के लिये लगना चाहिये। किसी धर्म के लिये नहीं लगे तो कंजूस का धन व्यर्थ। डाकू का अर्थ अनर्थ है। डाकू अधर्म से कमाता है।

धर्म विहीनम अर्थ अनर्थम

जो धर्म विहीन अर्थ है वह अनर्थ है, चोरी का धन बलैक मारकेट का रिश्वत का धन, ठगी का धन, बेईमानी का धन सब अनर्थ है। अनर्थ का धन क्या करेगा। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं शंकर भगवान के कोप से जो पाप का दाम है पाप का पैसा है वह जायेगा यह परीक्षित बातें है Tested principal टैस्टेड प्रिंसिपिल है। कैसे जायेगा? तेरा कलेजा जलाकर जायेगा नहीं तो मेरा मुंह पर थूक देना। पाप का पैसा किसको पचता है? कलेजा जलाकर जाता है। इसलिये अर्थ-अनर्थ नहीं होना चाहिये।

धर्म विहीनम् अर्थ अनर्थम्

लंदन विश्वविद्यालय में एक प्रो. बेन्हम उन्होंने एक पुस्तक लिखी है Economic of prostitution वेश्यागिरी का अर्थशास्त्र। वे कहते हैं देखो भाई जब हम Economic पढ़ते हैं तो शुरू में कह देते हैं। वे कहते हैं जब हम Economic पढ़ते हैं, तब क्या कहते हैं प्रथम में ही बताते हैं हर आदमी स्वार्थी पैदा होता है। Every man is born selfish. दूसरा हम कह देते हैं The soal goal of life is money. जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य है पैसा इकट्ठा करना। तीसरी बात हम कह देते हैं। In the whole study of Economic. Ethic has no enterfair. सारे अर्थशास्त्र के अध्ययन में धर्मशास्त्र का दखल नहीं होना चाहिये। यह अजीब बात है एक माता या House wife की तुलना में वैश्या का कर्म या धन्धा Economically ज्यादा Profitable है। याने वैश्या का धन्धा आर्थिक दृष्टि से ज्यादा लाभदायक है। उन्होंने बताया एक माता या House wife कितना काम करती है? जितना काम वह करती है। उसका Value है 40 पौण्ड। मां की दुर्गति कर दी। यह पश्चिम या चिंतन है। यह भोगवाद का चिंतन है। अर्थ परायणता का चिंतन। स्वार्थ परायणता का चिंतन है। स्वार्थी स्वार्थ की दृष्टि से देखता है, अर्थ की दृष्टि से देखता और उसका अर्थ अनर्थ हो जाता है। क्योंकि धर्म का अंकुश नहीं है। यह दुर्गति हो जायेगी। अतः धर्म विहीनम् अर्थम् अनर्थम् एवं यज्ञ विहीन अर्थम् व्यर्थम्। माने बिना यज्ञ के अर्थ अनर्थ है। यज्ञ माने विश्वकल्याण और बिना विश्व कल्याण के यज्ञ व्यर्थ है। यज्ञ भावना नहीं रहेगी तो अर्थ व्यर्थ हो जायेगा। इसलिये अर्थ न अनर्थ होना चाहिये। न व्यर्थ होना चाहिये, अर्थ अर्थ ही होना चाहिये। किसी अच्छे काम के लिये लगे। इस प्रकार से अर्थ न अनर्थ

हो न व्यर्थ हो। प्रायः हम समझते हैं हम किसी से चोरी-ठकोरी नहीं की बेईमानी नहीं की तो हमारा अर्थ बड़ा पवित्र है। यह भ्रांति है। हमारा अर्थ पवित्र नहीं हुआ, क्यों? क्योंकि हमने उसका अच्छे अर्थ में विनियोग नहीं किया। किसी अच्छे अर्थ के लिये लगाया नहीं। झरिया के तनसुखराम के प्राण को हरके यमदूत ले गये और यम से पूछा इसको कहां डाले। यमदूतों से खुदाजहान ने कहा इसको नरक में डाल दो। उसने क्यों जी हमने पानी भी छानकर पीते थे, किसी जीव को कष्ट नहीं देते थे। किसी को मारते नहीं थे। किसी ग्राहक को हमने ठगा नहीं है। चोरी का पैसा हमने रखा नहीं है। ब्लैक मारकेट हमने की नहीं है। धर्म की कमाई की है। सबकुछ हमने ईमानदारी से लिया है। मन्दिर पर नित्य दर्शन करने जाते थे। व्रत-त्योहार करते थे। हम तो चींटी तक को कष्ट नहीं देते। हमको नरक में डालेंगे। यमराज ने कहा देखो भाई तुम्हारे ऊपर एक बाल हत्या का अपराध है। चींटी को नहीं मारा और बाल हत्या का अपराध है। और तुम्हारे ऊपर पांच गो हत्या का अपराध है। पानी छान कर पीये। सूर्यास्त के पहले खाना खाये, सूर्यास्त के बाद खाना खाये नहीं। किसी जीव को कष्ट न देंवे। गौ हत्या हमारे ऊपर। झूठ! हां तेरे पर 5 युवकों की हत्या और 10 नर हत्या का भी पाप है। बिलकुल झूठ है। और दस नवयुवकों को जीवन-भ्रष्ट करने का पाप भी तेरे माथे पर है। राम-राम। आपतकाल में झूठे केस बना लिये जाते थे और सब प्रकार से लोगों को मीसा एवं जेल में कैद कर देते थे। क्या यहां का इन्दिरा गांधीजी का राज्य है। आपतकाल में लोगों को झूठ-मूठ फसाकर, नकली केस बनाकर जेल में बंद कर दिये जाते थे और सब प्रकार से सताये जाते थे। क्या यहां भी इंदिरा जी का राज्य है। तब यमराज ने कहा नहीं लाला। तब सुनो तुम्हारे पड़ोस में एक बनवासी रहता था। उसका एक छोटा-बच्चा था। उसको टाई-फाइड हुआ था। उसके पास डॉ. का 32 रुपया फीस नहीं थी। तेरे पास था? हां था। उसके पास औषध के पैसे नहीं थे। तुम्हारे पास भी? हाँ थे। तेरे पास भगवान का दिया हुआ। अब ईमानदारी से बता क्या जन्म के साथ छदाम लेकर आया था? नहीं। लौटकर परलोक आया तो क्या छदाम लेकर आये हो? नहीं। तब धन किसका था। तू कहता है मेरा था, धर्म से कमाया हुआ था। बता धन किसका है? तेरा होता तो तू लेकर जाता। तेरा होता तो तू लेकर आता। तुझे भगवान से धन मिला Trust करके विश्वास करके कि तू इसका समाज के भलाई के लिये बड़ा से बड़ा विनियोग करेगा, सदुपयोग और तेरे पड़ोस में बच्चा बीमार पड़ा। उसके लिये न तू अपनी कार दे सका न इलाज करवा सका। उस बाल हत्या का पाप तेरे माथे पर है। बता 1967 में बिहार में सूखा पड़ा था या नहीं? हां पड़ा। वहां 5 गाय चारा खत्म होने से मर गई थी या नहीं, हां मर गयी थी। तेरे पास करोड़ों रुपया पड़ा था बैंकों में, तिजौरियों में और तुम पांच को चारा नहीं खिला

सकता था? बोल खिलाया? वह पाप तेरे माथे पर है। 50 व्यक्ति भूखमरी से मर गये। वह पाप तेरे माथे पर ही है। 10 युवक मैट्रीक पास करके तुम्हारे पास आये कि हम आगे पढ़ना चाहते हैं। पर फीस का पैसा नहीं, पुस्तक का पैसा नहीं है, हमारे पास कोई साधन नहीं है आप थोड़ा सहयोग कर दीजिये। तूने कहा जा-जा सबका हमने ठेका लिया है। सब आ जाते हैं। मांगने के लिये। तूने भगा दिया। वे आगे पढ़ नहीं सके। वे बेचारे पड़ गये नक्सलों के चक्कर में और नक्सलपंथी बन गये। इस प्रकार 10 युवकों को जीवन भ्रष्ट करने का पाप तुम्हारे माथे पर है। अब बता तू पापी है या नहीं। तब तनसुखराम रो-रो कर कहता है हां मैं पापी हूँ। धन तो कमाया धर्म से पर धन का विनियोग नहीं किया धर्म के लिये। जो अर्थ धर्म के लिये लगे वह अर्थ अर्थ है। धर्म से कमाओ और धर्म में लगाओ। तब अर्थ अर्थ होता है। नहीं तो अर्थ या तो अनर्थ है या व्यर्थ है। अर्थ को न अनर्थ होने दो, और न व्यर्थ होने दो। इसलिये भगवान का अर्थ भगवान के चरणों में समर्पित करो। भगवान की वस्तु भगवान के चरणों में समर्पित करो।

इसलिये भगवद्ध्वज के सामने उसकी तार-तार मैं उन सब ऋषि-मुनि, महात्माओं, संतों, योगी का संदेश गुंज रहा है। सब ऋषियों ने इस भगवे वस्त्र को धारण किया है, संन्यासियों ने भगवे वस्त्र को धारण किया है। भगवा वस्त्र परम पवित्र है। इन्द्र का झण्डा वेदों में भगवा ध्वज या झण्डा कहा है। भगवा झण्डा भगवान् का झण्डा है। भगवत् ध्वज जो त्याग का, यज्ञ की ज्वालाओं का प्रतीक है, सूर्य की ज्योति का प्रतीक है यह जो गैरिक ध्वज है इस गैरिक ध्वजा के सामने मानो पूरे भारतीय इतिहास समस्त भारतीय संस्कृति एवं समस्त ऋषियों का साक्षी मानकर हृदय पर हाथ रखकर हमने प्रणाम किया। और इस हाथों से फूल चढ़ायें हैं। इस श्रद्धा के साथ है परम पवित्र भगवा ध्वज है महान भारतीय संस्कृति है महान भारतीय ऋषि परम्परा है भारत की कोटि-कोटि संतान हम तुम्हारी रक्षा के लिये सदा अपना तन समर्पित करेंगे मन समर्पित करेंगे और कुछ धन समर्पित करेंगे और समय देंगे सबके लिये और हे मातृभूमि आवश्यकता पड़ने पर तेरी लाज बचाने के लिये तेरे सम्मान की रक्षा के लिये तेरी महान संस्कृति की रक्षा के लिये हम अपना प्राण कुसुम की आपके चरणों में चढ़ायेंगे और अहंकार नहीं करेंगे और कहेंगे इदम् न मम्, इदम् न मम्—यह मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं आपका है।

हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है।

—महात्मा गांधी

गुरु पूर्णिमा-दो

वेद विश्व का प्रथम ज्ञानलोक है। उस पावन प्रकाश को विधिवत् सम्पादित करके मानवता की भावी पीढ़ियों के लिए सुलभ बनाने वाले भगवान् वेदव्यास विश्व के प्रथम एवं महानतम ज्ञान-सम्पादक हैं। विश्व के सर्वोच्च दर्शन वेदान्त के द्रष्टा होने के कारण वे विश्व के प्रथम कोटि के महानतम दार्शनिक हैं, महाभारत जैसे ग्रन्थराज के रचयिता होने के कारण वे विश्व के प्रथम विश्वकोश निर्माता हैं, पुराणकर्ता के रूप में वे विश्व के प्राचीनतम एवं महानतम पुराणेतिहासकार हैं। विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के स्रष्टा कवि के रूप में विश्व के महानतम महाकाव्यकार हैं, श्रीमद्भगवत् महापुराण के रचयिता के रूप में वे भक्ति के महानतम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास विश्व के महानतम गुरुओं में पूज्यतम पद पर प्रतिष्ठित हैं। उनकी पूजा वास्तव में ज्ञानगंगा की ही पूजा अथवा समस्त गुरु-परम्परा की पूजा है।

प्राचीन भारत में ऐसी प्रथा थी कि श्रावणी अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा के अवसर पर, जब वर्षा का वेग कम होने लगता था, वेदादि शास्त्रों के पठन-पाठन का क्रम चालू होकर ग्यारह मास अर्थात् आषाढ़ मास की पूर्णिमा पर्यन्त बराबर नियत रूप से चलता रहता था, एक मास के वार्षिक अवकाश के उपलक्ष्य में आषाढ़-पूर्णिमा को विशेष पर्व के रूप में मनाया जाता था। उसी का नाम व्यास पूजा रखा गया था। उस अवसर पर प्रत्येक छात्र अपने पूज्य व्यास अर्थात् गुरु के प्रति अपनी विशेष श्रद्धा को प्रकट करता हुआ कुछ न कुछ दक्षिणा भेंट करता था।

गुरु शब्द दो अक्षरों के मेल से बना है—गु+रु (गु अर्थात् अंधकार से रु अर्थात् प्रकाश की ओर ले जाना)। वेदों में ज्योतिस्वरूप परमेश्वर से प्रार्थना की गई है—तमसो मा ज्योतिर्गमय (हे भगवान्! मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ)। मानव देहधारी गुरुओं का भी यही कर्तव्य है कि वे अपने शिष्यों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जावें।

गुरु की महिमा

धार्मिक, नागरिक एवं राष्ट्रीय क्षेत्र में ध्वज का वही महत्त्व है जो मानव

शरीर में शिखामणि का है। बिना ध्वजा के पूजा, मंदिर, प्रासाद, भवन एवं राष्ट्र भी शीश विहीन या शिखा-विहीन प्रतीत होते हैं।

ध्वज का अर्थ है, 'ध्वजति, उच्छ्रितो भवति इति ध्वजः' जो उत्तुंग, उन्नत, उठा हुआ फहरता है वही ध्वज है।

पताका का अर्थ है 'पत्यते ज्ञायते कस्यचित् भेदीऽनमा' जिससे किसी विशेष भेद (प्रकार, श्रेणि) की पहचान हो सके वह चिह्न, प्रतीक या लक्षण। जैसे सेना की भिन्न-भिन्न वाहिनियों की अपनी पताकाएं होती हैं।

केतः, केतुः, केतनम्—का अर्थ भी झण्डा, चिह्न-प्रतीक है, जैसे कामदेव को मकरध्वजः और मकर केतन कहते हैं।

ध्वज एवं केतुः का अर्थ—मुख्य, प्रेरक, प्रधान, नेता, मार्गदर्शक भी होता है, जैसे रामायण में भगवान् राम को रघुकुल केतु, रघुवंश में मनुवंश केतु कहा गया है।

पंचतंत्र में कहा है—

किं तेन जातु जातेन मातु यौवन हारिणा।
आरोहति न या स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा।।

'मातृ यौवन हारी उस नर के जन्म से जग को लाभ ही क्या? ध्वज समान जो अपने वंश का नाम न ऊँचा कर पावे।

ध्वज का पूजा-होमादि में भी इतना महत्त्व है कि शिवसर्वरच में लिखा है कि ध्वज रहित भवन में सब जप, तप, पूजा-होमादि व्यर्थ हो जाते हैं।

ध्वजेन रहितो विप्र प्रासादस्तु वृथा भवेत्।
पूजा होमादिकं सर्वं जपाद्यं यत् कृतं नरैः।।

ध्वज का पर्याय वैजयन्ती शब्द भी है जिसका अर्थ ही विजय-पताका है। अतः ध्वज सदा मंगल, विभूति विजय का प्रतीक है।

भारतीय परम्परा में प्रायः सभी देवों, सन्तों एवं वीरों के ध्वज होते हैं। भगवान् विष्णु गरुडध्वज हैं। गरुड जो वाहन रूप में उनके चरणों के नीचे रहता है, उसे ही मान देकर भगवान् ने अपने सिर से भी ऊपर अपने झंडे में स्थान दिया। इसी प्रकार शिव वृषभ वाहन भी हैं और वृषभ केतु भी, गणेश जी मूषक वाहन और मूषक केतु भी, कार्त्तिकेय मयूर वाहन भी और मयूर ध्वज भी, दुर्गा सिंह वाहिनी भी और सिंह ध्वजा भी प्रसिद्ध है। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के ध्वज पर हनुमान्‌जी प्रतिष्ठित थे। सन्तों-महात्माओं के ध्वजों पर ॐ, स्वस्तिक, धर्मचक्र, श्रीचक्र, कमल, हवन कुंड, कमंडलु, सुदर्शन चक्र आदि के प्रतीक होते हैं। नेपाल के राष्ट्रीय ध्वज में भगवे झंडे पर सूर्य एवं चन्द्रमा के चिह्न बने हैं। सन् 1947 से

पूर्व प्रायः सभी हिन्दू रियासतों में भगवे झंडे पर भिन्न-भिन्न प्रतीक अंकित रहते थे। वीरों के सैनिक ध्वजों में उनके प्रिय अस्त्र-शस्त्रों के चिह्न रहते थे। स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने हिन्दू महासभा के भगवा ध्वज पर ॐ, स्वस्तिक, यज्ञाग्नि और तलवार के चिह्न नियत किये थे। ऑर्गनाइजर की भेंटवार्ता में सेफूद्दीन जिलानी ने कहा 'पैगम्बर मुहम्मद ने भी आन्दोलन स्वस्तिक चिह्न ध्वज को लेकर किया था।' हिटलर के ध्वज में भी स्वस्तिक चिह्न अंकित रहता था।

भारत का प्राचीनतम सर्वमान्य ध्वज भगवा ध्वज ही है। वेद में इन्द्र के झंडे को भगवत् ध्वज दंड कहा गया है, जिसका अर्थ है भगवान् का झण्डा। उसका रंग स्वर्ण गैरिक कहा गया है, उसमें गेरु मिट्टी का रंग तथा सोने की चमक दोनों हैं। भग का अर्थ है तेज, प्रकाश, ज्योति, ऐश्वर्य। भगवान् को भग (तेज) से युक्त होने पर भगवान् कहा जाता है—

ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययो श्चैव यस्मां भग इतींगना।।

'भग' (छः विशेषताओं) से युक्त होने के कारण परमेश्वर को भगवान् कहते हैं। वे हैं जगत् का समस्त ऐश्वर्य (सामर्थ्य), समस्त धर्म, समस्त यश, समस्त शोभा, समस्त ज्ञान और समस्त वैराग्य।

भगवान् के समान भगवान् का झंडा भी तेज, ओज, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य आदि का प्रतीक है। वेदों में स्थान-स्थान पर भग की महिमा का गायन है। ऋग्वेद 1/62/7 में लिखा है—

भगो ना मेने परमे व्योमन्नधारयत् रोदसि सुदंसा : ('उस उत्तम प्रशंसा वाले भग (तेज) ने व्योम में, सूर्य के समान उन दोनों, पृथ्वी और आकाश को धारण किया।) अथर्ववेद का मंत्र है—

भगो मा भगेनावतु, प्राणायापानयायुषे वर्चस,
ओज से तेजसे स्वस्तये, सुभूतये स्वाहा।।

(अ./19/45/9)

ऐश्वर्य सम्पादक गुण के द्वारा भग देवता मेरे रक्षक हों। वे प्राण, अपान, आयु, वर्चस, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिए भी मेरी रक्षा करें। (अ./19/45/9)

अथर्ववेद में देवों की असुरों पर विजय की भावना इस मंत्र में प्रकट हुई है—

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी व क्रोशतु।
त्रिषन्धे सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः।

(अ.11/10/7)

('धूम से शत्रु सेना के नेत्र आच्छादित हो जायें। वे गिरने लगें। उनकी श्रवण शक्ति रणघोष से नष्ट हो जाए। जब त्रिसंधि देवता शत्रु विजय हेतु अरुण ध्वज लहरावें तब असुर रोने लगें।)

अरुण सूर्यनारायण का सारथि माना गया है। जैसे महारथी से पूर्व सारथि का दर्शन होता ही है उसी प्रकार सूर्य भगवान् के सात अश्वों (सात रंगों एवं सात दिनों) वाले रथ को चलाने वाले सारथि अरुण की भगवी लालिमा का दर्शन होता है। अतः अरुण ध्वज को सूर्य ध्वज भी कहते हैं।

प्रत्यक्ष सूर्योदय से पूर्व ही जो अरुण की भगवी लालिमा प्राची दिशा में प्रस्फुटित होती है। उसे ही उषाकाल कहा जाता है। जब प्रातःकाल सूर्यनारायण अपने शुभागमन की पूर्व सूचना देते हुए प्राची दिशा में अपनी स्वर्ण गैरिक पताका फहराते हुए आते हैं तब वैदिक ऋषि गायत्री, सावित्री, सूर्या, उषा का स्तवन कर भगवान् का अभिनंदन करते हैं। वह भागवत मुहूर्त या ब्राह्ममुहूर्त का काल है।

मानव देहधारी गुरुओं को समूचे राष्ट्र का गुरु मानने में निम्नलिखित कठिनाइयाँ पैदा होती हैं—

क. मानव पूर्ण नहीं होता। कुछ न कुछ अभाव उसमें रहता है।

ख. मानव अल्पजीवी होता है। यदि उसे राष्ट्र-गुरु मान लिया जावे तो उससे पूर्व के राष्ट्र-नागरिकों का राष्ट्र-गुरु कौन होगा तथा उसका स्वर्गवास होने के उपरान्त नागरिकों को जीवित गुरु का मार्गदर्शन कैसे मिलेगा?

ग. मानव मन की वृत्तियाँ बदलती रहती हैं। यदि गुरु ही बदल गया या पतित हो गया तो पूरे राष्ट्र का क्या होगा?

घ. वास्तव में जीवित गुरु का शरीर तो निमित्त मात्र होता है, वास्तविक गुरु तो गुरु का ज्ञान ही होता है, जिसका कोई शरीर नहीं।

विचार करने पर प्रतीत होता है कि भारत के युग-युग के इतिहास में समस्त गुरुओं के उपदेश का एकसमान तत्त्व रहा—त्याग, यज्ञ, बलिदान। बिना वैराग्य, विवेक, समर्पण के ज्ञान का उदय असम्भव है। अतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सूक्ष्म विचार कर ज्ञान और वैराग्य के प्रतीक भगवा ध्वज को ही (तत्त्वतः ज्योति और यज्ञ भावना को ही) पूरे राष्ट्र का गुरु माना है।

भगवा रंग बड़ा पूज्य एवं प्रेरक रंग है—

क. यह नारंगी का रंग है जो अन्दर और बाहर से (छिलका, फाडी और रस में) एक ही भगवे रंग का है। अन्दर-बाहर से भिन्न-भिन्न भाव वाला दुरात्मा होता है। महात्मा वही है जो बाहर-भीतर से एक हो, जिसकी कथनी-करनी में एकता हो।

ख. यह अग्नि का रंग है, संन्यास का रंग है। संन्यास आश्रम में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन की सभी एषणाओं का हवन करके समष्टि जीवन का

श्रीगणेश करता है। वह परमार्थ के लिए स्वार्थ को, समष्टि के लिए व्यष्टि को होम कर देता है।

ग. अग्नि का भोजन अंधकार है और प्रसाद प्रकाश है। कोयले को धोने के लिए यदि संसार भर का सारा साबुन लगा देवें तो भी वह कभी सफेद नहीं होगा। किन्तु यदि वह अग्नि में डाल दिया जावे तो अग्नि उसके सारे कालेपन को खाकर उसे अपने समान देदीप्यमान कर देती है। इसी प्रकार सच्चा गुरु शिष्य के अन्धकार को दूर कर उसे अपने समान तेजस्वी बना देता है।

घ. मानव को माया के बंधन में बांधने वाले दो प्रमुख कारण हैं—

(i) अहंता—अपने ठीक स्वरूप का अज्ञान तथा भ्रमवश शरीर, इन्द्रिय या मन-बुद्धि को ही आत्मा मान लेना। इससे अहंकार बढ़ता है।

(ii) ममता—जो वस्तुएं अपनी नहीं है, उसके प्रति मोह-ममता की भावना रख कर उन्हें अपना मानते रहना। इससे स्वार्थ बढ़ता है।

ङ. भगवा ध्वज अपनी स्वर्ण-गैरिक-तेजस्वी ज्योतिच्छटा से अज्ञान का नाश करता है तथा अपनी यज्ञ ज्वालाओं से हमारे स्वार्थ को भस्म कर हमें परमार्थी बनाता है।

सवितृदेव की ज्योति से अज्ञान का नाश होता है तथा यज्ञ ज्वालाओं से स्वार्थ भस्म होता है।

अहंता और ममता का नाश हो जाने पर जीवन ज्योतित एवं यज्ञमय बन जाता है। ऐसा जीवन इहलोक में समुत्कर्ष एवं परलोक में परम निःश्रेयस का लाभ कर धन्य-धन्य हो जाता है। ऐसे राष्ट्रार्पित जीवनव्रती सज्जनों से राष्ट्र का भाग्य बदल जाता है तथा भारतमाता के परम सौभाग्य का दिन आ जाता है।

इस भगवा ध्वज के तार-तार में अनेक ऋषि-मुनियों का तप-तेज, अनेकों ज्ञानी गुणियों का प्रखर ज्ञान, बलिदानी वीरों का महान् बलिदान, जौहर की ज्वालाओं एवं संगठन संजीवन की प्रेरणाओं का इतिहास अनुस्यूत है।

इसीलिए शिवाजी ने भगवे झण्डे को गुरु रूप में प्रतिष्ठित किया।

कांग्रेस ने पंडित नेहरू की अध्यक्षता में एक बैठक नियत की थी। उसने भी मत दिया था कि भारत का ध्वज भगवा ही हो सकता है। किन्तु मुसलमान तुष्टीकरण की नीति के कारण बाद में तिरंगा झंडा स्वीकार किया गया। तिरंगा झण्डा वर्तमान शासन द्वारा तथा उससे पूर्व कांग्रेस द्वारा स्वीकृत राजकीय ध्वज है जिसका समादर करना चाहिए। किन्तु 40 वर्ष पुराने इस ध्वज की तुलना में भारतीय राष्ट्र का युग-युग से पूजित राष्ट्रध्वज, भगवा-ध्वज ही है, जिसे पुनः राष्ट्रव्यापी श्रद्धा समर्पित करना परमावश्यक है।

विद्या, वीरता-विजय एवं वैभव का मंगल-पर्व रक्षा-बंधन

भारतीय संस्कृति मानव की निगूढ़ दिव्य शक्तियों एवं मानवीय मूल्यों का समुचित विकास करके उसे देवोपम गरिमा के योग्य बना देने की सुगम साधना है। मानव तथा मानवीय समाज दोनों ही संस्कार ग्रहण करते हुए धीरे-धीरे सुसंस्कृत बनते हैं। अतः हमारे राष्ट्र जीवन में धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों का महत्त्व अत्यधिक है, जिन्होंने युगानुयुग इस महादेश की कोटि-सन्तानों को धर्म, नीति एवं कर्तव्य की शाश्वत प्रेरणा देकर हमारे राष्ट्र को चिरन्तनजीवी बना दिया है। संस्कृति का कार्य ही संस्कार देना है। विश्व भर में मानव को उच्चतम संस्कार दे कर उसका उच्चतर परिष्कार करने वाली भारतीय संस्कृति संसार-भर में महानतम है।

हमारे समाज के इतिहास में वह पुज्यवेला धन्य रही होगी जब से हमारी जाति में रक्षा-बंधन की पावन परम्परा का सूत्रपात हुआ होगा। हम भारतीयों का जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जो हमारी जाति को चिरन्तन जीवन प्रदान करता है। आज भी श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन कर्तव्य की गूढ़ गांठों से बंधी हुई हमारे कर की राखी पुनः लोकोत्तर दृष्टिकोण का संदेश सुनाती है?

मातृवत परदारेषु, पर द्रव्यपुलोष्ठवत।
आत्मवत सर्वभूतेषु-यः पश्यति स पश्यति।।

संसार की सभी पराई स्त्रियों को जो माँ-बहिन समझता है। सभी पराए धन को कचरे के तुल्य समझता है, सभी जीवों में अपनी ही आत्मा देखता है वही वास्तव में देखता है। जिसको ऐसी दृष्टि नहीं मिली वह तो अंधा है।

वेद ज्ञान का आलोक पर्व

रक्षा-बंधन का प्राचीन नाम श्रावणी, उपाकर्म तथा ऋषि-तर्पण पर्व भी है। वेद विश्व का अनादि वाङ्मय है तथा जो पर्व वेद मूलक है, वह पर्व भी अनादि है। हमारा यह महान् गौरव है कि जब शेष सारा संसार अंधकार एवं अज्ञान की पगडंडियों पर मार्ग टटोल रहा था, जब अमरीका का पता तक नहीं था तथा

डारविन के यूरोपीय पूर्वजों ने अपनी बंदर की पूंछ काट कर इन्सान की उपाधि प्राप्त नहीं की थी तब भारत के ऋषि हाथ में वेद ज्ञान की मशाल लेकर सारे विश्व को प्रकाश का दान कर रहे थे।

प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुसार इस दिन ब्रह्माजी ने वेद गाये थे। स्कंद-पुराण के अनुसार आज के दिन श्रवण नक्षत्र के आरंभ में भगवान् विष्णु का हयग्रीव नामक अवतार हुआ। इस हयग्रीव जयन्ती के दिन भगवान् ने ऋग्वेद और यजुर्वेद की संख्या में सामवेद की अभिवृद्धि की। भगवान् ने यह सामघोष प्रथम बार वितस्ता (झेलम) और सिन्धु के पवित्र संगम पर किया।

श्रातष्यां श्रवणे पूर्वं
जातो हयशिरा हरि,
जगाम सामवेदं तु सर्वं
किल्विश नाशनम्।
सिन्धु नदी वितस्तायां
प्रवृत्तस्तत्रं संगमें,
श्रवणर्क्षे ततस्तत्र स्नानं
सर्वार्थ सिद्धिदम्।।

(स्कंद पुराण)

स्कंद पुराण का आदेश है कि वेदगान के पुण्यतीर्थ सप्त सिंधु प्रदेश में झेलम तथा सिंधु के संगमों पर स्नान करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है। भारत के कोटि-कोटि नर-नारी की भी सर्वार्थ सिद्धि तभी होगी जब वे भारत को पुनः अखण्ड बना कर वेदों की भूमि पर जाकर वितस्ता (झेलम) तथा सिन्धु नदी के पवित्र जल से स्नान करेंगे।

यह पर्व वेदाध्ययन के आरम्भ का पर्व है। वैदिक ज्ञान के आरम्भ का उपक्रम होने से यह उपाकर्म कहलाता है। वैसे भी यह गुरु के निकट जाने का कर्म (उपाकर्म) है।

ऋषि-तर्पण के रूप में यह वेदों के मंत्रद्रष्टा ऋषियों के तर्पण का पर्व है। जिन ऋषियों ने हमें यह महान् ज्ञान-भण्डार दिया उनके प्रति हमारा एक महान् ऋण है। उन ऋषियों का तर्पण कैसे किया जाए? वे तो आप्तकाम हैं। उन्हें कोई कामना नहीं। अतः तृप्ति की आकांक्षा नहीं। केवल अपना कर्तव्य पालन करने के लिए ऋषि-ऋण उन ज्ञानदाता ऋषियों का तर्पण ज्ञान-साधना से ही किया जाता है। मनु भगवान् का आदर्श चुकाने के लिए है—

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्।

अर्थात् ऋषियों की स्वाध्याय से अर्चना की जाय। अतः यह वेद के स्वाध्याय का पावन ज्ञान पर्व है।

शिक्षा सूत्र

प्राचीन काल में शिष्य लोग गुरुकुलों में गुरु की सेवा में रह कर शिक्षा प्राप्त किया करते थे। उनकी शिक्षा का नया सत्र रक्षा-बंधन से प्रारंभ होता था। रक्षा-बंधन (उपकर्म) से पौष पूर्णिमा तक 6 मास का एक शिक्षा सत्र होता था तथा इसी प्रकार दूसरे 5 मास का दूसरा शिक्षा सत्र होता था। रक्षा-बंधन से 1 मास पहले गुरु पूर्णिमा के दिन शिष्यगण गुरु को गुरु-दक्षिणा भेंट करके एक मास के वर्षावकाश पर अपने-अपने घरों को चले जाते थे। इस दिन वे पुनः गुरु के चरणों में लौट कर नये वर्ष की नई कक्षाओं का अध्ययन प्रारंभ करते थे।

दक्षिणायन पर्व

ज्योतिषियों के मतानुसार रक्षा-बंधन के दिन तक पृथ्वी सूर्य के गिर्द अपनी वार्षिक गति का आधा भाग समाप्त कर लेती है। जैसे मकर संक्रांति से उत्तरायण प्रारम्भ होता है। वैसे ही रक्षा-बंधन को उत्तरायण समाप्त हो कर दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है। इस दिन द्विज लोग नदी पर जा कर पंचगव्य सहित स्नान करके अपने आप को मानसिक प्रायश्चित्त द्वारा निष्पाप बना कर नया यज्ञोपवीत धारण करते थे। इस दिन वेद की ध्वनि से ग्राम, नगर, वन-उपवन गूंज उठते थे। इस विद्या के लिए सत्य संकल्प का यह ज्ञान प्रधान उत्सव संसारभर में अनूठा है।

व्रतेन दीक्षा माप्नोति, दीक्षाप्नोति दक्षिणाम।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धा सत्यमाप्नुते।।

श्रावणी पर्व

श्रवण नक्षत्र तथा श्रावण मास हिन्दू जाति में बड़े महत्त्व का है। श्रवण नक्षत्र में वेद श्रवण का बड़ा महत्त्व है। श्रावण मास में शिव पूजन किया जाता है। श्रावण में अनेक प्रकार के नए जीव-जन्तु पैदा होते हैं। जो पशुपति की प्रजा हैं। अतिवृष्टि से सरिताएं रजस्वला हो जाती हैं। अतः रक्षा-बंधन से पहले नदियों में स्नान वर्जित होता है। इस दिन पुनः स्नान किया जाता है। शिव का सहस्रधारा पूजन किया जाता है।

जब धरती (प्रकृति) जलप्रलय के भय से भयभीत हो जाती है तब वह पुरुष (शिव) को पुकारती है प्रकृति-पुरुष के मधुर मिलन का पर्व श्रावणी है। प्रकृति-पुरुष के इस लीला उत्सव में बालिकाएं झूला झूलती हैं और सावन के गीत गाती हैं।

श्रावण मास का त्रेता युग के प्रसिद्ध मातृ-पितृ भक्त बालक श्रवण कुमार से भी संबंध बताया जाता है। मातृ-पितृ भक्त श्रवण कुमार का जिन्होंने अपने

कन्धों पर बिठाकर माता-पिता को इच्छित तीर्थयात्रा कराई और दशरथ के शब्द भेदी बाण से मारा गया। मातृ-पितृ भक्त श्रवणकुमार का चरित्र युगों से भारतीय सन्तानों को एक महान् प्रेरणा प्रदान करता रहा है।

वीरता-विजय और धर्म का पर्व

अथर्ववेद में मानव की विजय के लिए उसके हाथ में गुरु द्वारा मंत्र पूत रक्षा सूत्र के बांधने का विधान है। उसके लिए कोई पर्व विशेष निश्चित नहीं था। आज भी किसी महान् अनुष्ठान के लिए 'व्रतेन दीक्षामाप्नोति' का गायन करते हुए गुरु शिष्य के हाथ में तथा शिष्य गुरु के कर (हाथ) में मांगलिक सूत्र बांधते हैं। इससे परस्पर गुरु तथा शिष्य दोनों ही एक पवित्र व्रत में बंध जाते हैं।

हमारी जाति के इतिहास के उषाकाल में ही जब असीरीया निवासी विदेशी, विधर्मी असुरों ने देवभूमि भारत पर आक्रमण किया तो भीषण देवासुर संग्राम हुए। एक बार असुर बड़े बलवान निकले, उन्हें पराजित करना कठिन हो गया। उस समय देवराज इन्द्र की कलाई में उसकी पत्नी इंद्राणी ने अबलाओं के मान-सम्मान की रक्षा के व्रत का स्मरण कराने वाला मंगल कामनाओं एवं पवित्र प्रार्थनाओं से अभिमन्त्रित रक्षा सूत्र बांधा तथा उन्हें युद्ध भूमि में भेज दिया। इस बार इन्द्र के वज्र धारी हाथ में बंधा हुआ पावन रक्षा सूत्र बार-बार इन्द्र को अपने महान् कर्तव्य का स्मरण कराता रहा तथा इस प्रकार उसके सम्पूर्ण शौर्य को प्रकट करने में हेतु बना। इन्द्र की विजय में धर्म की विजय और भारतीयता की विजय थी।

भाई-बहिन के स्नेह का पर्व

भारतीय संस्कृति में बहिन का सम्बन्ध प्रेम एवं पूजा के समन्वय से बना है। भगवान् वेदव्यास का कथन है—

न हि भगिनी समो मान्या न हि मातृरूया गुरु।

अर्थात् बहिन के समान कोई मान के योग्य नहीं है और माता के समान कोई गुरु नहीं है। आज श्रावण पूर्णिमा के दिन बहिन-भाई के हृदय में पावन प्रेम हिलोरें लेता है।

स्नेह पर्व की पावन राखी
तेरे अमर सूत्र में बंध कर
भाई देता वचन बहिन को
अन्तिम सांसों तक रक्षा का

शक्ति तथा शील का पर्व

भारत में क्षत्रिय किसी कसाई का नाम नहीं है। वह अत्याचारी नहीं, शूरवीर है। वीरता को धर्म की पुकार ही जगा सकती है। अतः भारत ने रक्षा-बंधन पर्व

में शक्ति तथा शील के समन्वय का सर्वोच्च आदर्श रखा है। धर्मपालन में दीनों, अबलाओं, असहायों की रक्षा के लिए जो अपने प्राण भी दे सके वही सच्चा वीर है। वही सच्चा क्षत्रिय है। शक्ति द्वारा कभी भी हमने निर्बल पर अत्याचार नहीं किया। रक्षा-बंधन मानवता के परिष्कार का अनूठा पर्व है।

ऐतिहासिक रक्षा-बंधन

कहा जाता है कि सिकन्दर की पत्नी रैक्सोना ने रक्षा-बंधन के दिन पोरस को राखी भेजी। इसलिए युद्ध भूमि में पोरस अपने भाले से सिकन्दर का कलेजा चीरने लगा तो अपने कर की राखी को देखकर अपने हाथ खींच लिए। इस प्रचलित कथा का ऐतिहासिक आधार चाहे अभी तक प्राप्त नहीं फिर भी इसमें रक्षा-बंधन का महत्त्व भरा हुआ है।

कर्णवती द्वारा हुमायूं को राखी भेजना इतिहास प्रसिद्ध है। जब महाराणा प्रताप के पौत्र राणा राजसिंह को रूपनगर की राजसुता चारुमती ने राखी भेजी तो वह तुरंत सेना सहित उस की रक्षा के लिए दौड़ा हुआ आया और औरंगजेब को पराजित कर चारुमती के सम्मान की रक्षा की। जब लार्ड कर्जन ने बंग-भंग की घोषणा की तो समूचा बंगाल इसके विरुद्ध खड़ा हो गया। रक्षा-बंधन के दिन सारे देशवासियों ने बंगाल की एकता की रक्षा का व्रत लिया, परस्पर राखी बांधी। इस प्रकार बंग प्रदेश अखण्ड रहा।

रक्षा-बंधन ब्राह्मणों का पर्व माना जाता है वस्तुतः रक्षा-बंधन हमारा एक राष्ट्र व्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है जिसमें समाज के सभी वर्ण एवं वर्ग परस्पर स्नेह के साथ-साथ परस्पर रक्षा का संकल्प लेते हैं। समाज की अज्ञान से रक्षा विद्वान् ब्राह्मण करे, अन्याय से रक्षा बलवान क्षत्रिय करे, अभाव से रक्षा धनवान वैश्य करे, प्रमाद से रक्षा श्रमिक शूद्र करे। इस प्रकार उच्च सौहार्द भाव से सभी बन्धु रक्षासूत्र से बंधकर समाज की रक्षा के लिये कृत संकल्प हो जाय, रक्षा-बंधन का यह दिव्य संदेश कितना महान् है।

जो उदारता, क्षमा, दया-विवेक के, वैदिक शास्त्र के सांचे-ढांचे में न ढली हो वह स्वयं को और देश को पतन और पराधीनता में ले जाती है।

—प्रो. ओबराय

कर्म एकादशी महापर्व

भारत एक धर्मप्राण देश है तथा भारतीय समाज एक उत्सव-प्रिय समाज। भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी तथा वनवासी तीन स्तरों में विकसित हुआ है। किन्तु सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक हुआ है। भारतीय जीवन की एकात्मता हमारे धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों की एकरूपता में भी प्रतिफलित हुई है।

भारतीय सम्वत्सर का भाद्रपद मास एक उत्सव प्रधान मास है। जहाँ भाद्र-कृष्णाष्टमी, भगवान् श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव है। वहाँ भादों के कृष्ण पक्ष में उत्सवों की एक मालिका ही सुशोभित है।

1. भाद्रपद शुक्ला 3—हरितालिका तीज—इस दिन भगवती उमा (पार्वती) ने भगवान् शंकर को वरण करने के लिए व्रत किया था। इस दिन नारियाँ अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए व्रत करती हैं। वे नदी तीर पर बालू से शिव एवं पार्वती की प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करती हैं तथा उमा (पार्वती) के समान ही अखण्ड सौभाग्य की कामना करती हैं।

छोटानागपुर में करमा (कर्म एकादशी) पर्व के निमित्त घर-घर में जवा (यव, जौ) बोने के हेतु देवियाँ नदी तीरों से स्वच्छ, पवित्र मिट्टी आज के दिन ही लाती है। फिर नवरात्र के नौ दिनों के समान ही तृतीया से एकादशी तक बांस की नई टोकरी या पत्तल में मिट्टी-गोबर भरकर उसमें कूप जल तथा हल्दी पानी देकर उस सुनहली जौ की खेती को अंकुरित किया जाता है। इन नौ दिनों में देवियाँ पूर्ण सदाचार का व्रत धारण करती हैं तथा मांस-मछली आदि का सेवन नहीं करती।

2. भाद्रपद शुक्ला 4—गणेश चतुर्थी—इस दिन गणों के ईश, विनायक गणपति का जन्मोत्सव मनाया जाता है। प्रकृति रूपी पार्वती माता को जिस प्रकार गणपति जैसे प्रथम-पूज्य पुत्र की प्राप्ति हुई उसी प्रकार छोटानागपुर में करमा एकादशी की व्रत कथा कहते हुए पहान (कथाकार) कुमारियों से पूछता है कि—'हे पार्वती! तुमने क्या पाया?' वे उत्तर देती हैं, 'ककड़ू लेकन कोड़ा होनले नमाना' अर्थात् हमने कद्दू जैसा बड़ा (गणपति जैसा विशाल) लड़का प्राप्त किया है।

3. भाद्रपद शुक्ला 5—ऋषि पंचमी—इस दिन ध्रुव की प्रदक्षिणा करने वाले सप्तर्षियों (महर्षि कश्यप, भरद्वाज, अत्रि, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ और विश्वामित्र) का पूजन किया जाता है। छोटानागपुर में देवियाँ डलियाँ में अंकुरित जवा की पावन खेती में श्रद्धा जल चढ़ाती हैं।

4. भाद्रपद शुक्ला 8—राधा अष्टमी—इस दिन आत्मा की अमर आराधना की प्रतीक भगवती राधिकाजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। छोटानागपुर में भी करमा पूजा के पखवाड़े में भक्ति एवं आनन्द का रस सर्वत्र तरंगित होता है।

5. भाद्रपद शुक्ला 8—दधीचि जयन्ती—देवराज इन्द्र को वृत्रासुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी अस्थियाँ दान करने वाले ऋषि दधीचि को श्रद्धांजलि समर्पित की जाती है। छोटानागपुर में भी इन्द्र पूजा की प्रथा है।

6. भाद्रपद शुक्ला 9—संत श्रीचन्द्र जयन्ती—गुरुनानक जी के ज्येष्ठ पुत्र उदासीन सम्प्रदाय के महान् संस्थापक संत श्रीचन्द्रजी का जन्म इसी दिन हुआ था।

7. भाद्रपद शुक्ला 10—दशावतार पूजा—इस दिन भगवान् विष्णु के दस अवतार (मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि) के पूजन का विधान है। छोटानागपुर में करमा एकादशी का पूर्व दिवस होने के कारण इस दिन नृत्य-संगीत का अलौकिक रंग छा जाता है। वन-पर्वत मान्दर की ताल तथा करमा के स्वागत गीतों से गूंज उठते हैं।

8. भाद्रपद शुक्ला 11—कर्म एकादशी—एकादशी भगवान् विष्णु की प्रिय तिथि है। करमा एकादशी पर विशेष रूप से कुछ विशेष वृक्षों अथवा तृणों (करम वृक्ष-कुश, तृण, झुंट आदि) का झूर स्थापित कर उसे विष्णु भगवान् की प्रकट विभूति मान कर षोडशोपचार पूजन किया जाता है। वृक्ष-जड़-पृथ्वी में चैतन्य का जीवन स्पन्दन है। वृक्ष मानव के मलिन मल को पचा कर उसे अमृत फल देता है, मलिन दुर्गंधपूर्ण वायु को पचा कर मानव को नवजीवन का नव श्वास प्रदान करता है। अतः वह सृष्टि के पालक भगवान् विष्णु का सुन्दर प्रतीक है। भारतीय लोकमानस ने वट वृक्ष, अक्षय वट अश्वत्थ (पीपल), तुलसी, आम्र, जम्बू, देवदारु, कल्प वृक्ष आदि को देवत्व की गरिमा से मण्डित किया है।

(ख) करमा एकादशी कथा—राजा द्विज शर्मा के दो पुत्र थे :—

1. कर्म (जिसकी पत्नी कर्कशा), 2. धर्म (जिसकी पत्नी सुशीला थी।)

धर्म की पत्नी करमा एकादशी व्रत करती है। कर्म की स्त्री न व्रत करती है न नियम। नित्य झगड़ा करती है। उसके कर्म (भाग्य) घर छोड़ कर भाग जाते हैं।

राजा कर्म शर्मा स्वयं अपने कर्म (भाग्य) को खोजने जाते हैं। वन में जिस मित्र के पास ठहरे उसके ऊपर भी विपत्ति आ गई। जिस आम्र वृक्ष के नीचे गये

उसमें भी कीड़े पड़ गये। राजा का भाग्य रूठ गया था। राजा व्याकुल होकर यमुना तट पर गिर पड़ा। उसके (कर्म) देव ऋषि का रूप धारण कर प्रकट हुए। उन्होंने राजा से कहा, 'तुम धर्म पर चलते हुए करमा एकादशी व्रत करो। इससे सब पापों से मुक्त हो जाओगे।'

(ग) दार्शनिक अर्थ—इस कथा का दार्शनिक अर्थ बड़ा सुन्दर है। जब हम धर्म को और सृष्टि के पालक विष्णु भगवान् को भूलकर कोई कर्म करते हैं तो कर्म (भाग्य) हम से रूठ जाता है, हमें शरण देने वाले मित्रों पर भी विपत्ति आती है, हमें छाया देने वाले वृक्षों तक को कीड़े लग जाते हैं और गाय रूपी माता के पास दूध होने पर भी हम बछड़े तरसते रह जाते हैं। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना प्रत्येक कर्म प्रभु को समर्पित कर दे, जिससे प्रत्येक कर्म धर्म बन जाये।

कथा की समाप्ति पर उपवास करने वाली सभी देवियाँ करम डाल (झूर) पर पुष्प एवं अक्षत समर्पित करती है।

(घ) करमा के नृत्य गीत—भारत की वनवासी जातियों में एक मुण्डारी कहावत चलती है, 'सेन गे सुसुन, काजी गे दुरांग' अर्थात् 'हमारी हर चाल नृत्य है तथा हर वाणी संगीत।' करमा पर्व पर प्रकृति के साथ तदाकार हुए हमारे वनवासी बन्धुगण अपने मनोहारी नृत्य-संगीत से सारे वन प्रान्तर को गुंजायमान कर देते हैं—

सातों भइया सातो करम गाड़य,
सातों गोतोनी सेवा करय हो।। सातों भइया।।
बड़ भइया मान्दर टांगय, छोट भइया पायल धरई।
डण्डा पटोरा भुइंयां लोरय हो।। डण्डा पटोरा।।

(ङ) करम डाइर मित्रता—कर्म डार (झूर) को भगवान् विष्णु के समान साक्षी मान कर वनवासी देवियाँ आपस में अखण्ड पवित्र मित्रता का व्रत लेती हैं। इसी प्रकार पुरुष पुरुषों से मित्रता का व्रत लेते हैं। वे इस व्रत को जीवन भर निभाते हैं तथा मित्र का नाम न बोल कर उसे करम डाइर कह कर बुलाते हैं।

9. भाद्रपद शुक्ला 12—वामन द्वादशी—यह वह महान् दिन है जिस दिन भगवान् विष्णु ने वामन अवतार धारण कर राजा बलि से दान का वचन लेकर तीनों लोक (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश) अपने तीन पग में माप लिए। इस दिन छोटानागपुर में करम डाल (झूरदेव) का नदी या सरोवर आदि में विधिवत विसर्जन किया जाता है। नृत्य-संगीत की मधुर सृष्टि से यह दिवस भी स्वर्गिक आह्लाद से पूरित हो उठता है।

10. भाद्रपद शुक्ला 14—अनन्त चतुर्दशी—इस दिन भुजंग शयन भगवान् विष्णु के विलक्षण आसन, भगवान् अनन्त (शेषनाग) का पूजन किया जाता है।

भगवान् विष्णु का शेषशायी रूप प्रशान्त ब्रह्म का चित्र है तथा उनको गरुड वाहन रूप गतिशील, कर्मशील, सृष्टिकर्ता ईश्वर का प्रतीक है। इसी दिन जैन धर्म के तीर्थंकर महावीर स्वामी को अनन्त ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस दिन छोटानागपुर के वनवासी बन्धु इन्द पूजा (इन्द्र पूजा) महोत्सव मनाते हैं। इन्द बोंगा देवराज इन्द्र ही है जो (वृत्रासुर दैत्य द्वारा) मेघों में बन्दी जलों को मुक्त कर धरती को शस्य श्यामला बना देते हैं। भगवान् विष्णु को उपेन्द्र (इन्द्र का भाई) भी कहा गया है।

11. भाद्रपद पूर्णिमा—(क) सत्यनारायण कथा—पूर्णिमा भगवान् विष्णु के सत्यनारायण स्वरूप का पूजन पर्व है। इस दिन भाद्रपद के उत्सवों की परिपूर्णता सम्पन्न होती है।

(ख) पितृ-पक्ष—इसी दिन से पितृ पक्ष पखवाड़ा प्रारम्भ होता है। भारत के श्रद्धालु जनगण अपने पूर्वजों, पितरों को श्राद्ध कर्म द्वारा अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं।

(ग) अप्पय दीक्षित जयन्ती—16वीं शती में इसी दिन दक्षिण भारत के एक अलौकिक संत-मनीषी अप्पय दीक्षित का जन्म हुआ था, जिन्होंने समाज को अपने महान् पाण्डित्य का प्रसाद संस्कृत के 104 अमूल्य ग्रन्थों में दिया। उनका चतुर्शताब्दी महापर्व इसी भाद्रपद पूर्णिमा को संसार भर में मनाया जा रहा है।

अलौकिक तथा दिव्य अप्पय दीक्षित को श्रद्धांजलि, हरितालिका तीज को श्रद्धांजलि, भगवान् गणपति को श्रद्धांजलि, सप्तर्षिगण को श्रद्धांजलि, भगवती राधिका, महर्षि दधीचि, संत श्रीचन्द्र, भगवान् वामन, भगवान् अनन्त आदि सभी विभूतियों को श्रद्धांजलि तथा सबसे ऊपर कर्म-एकादशी महापर्व को हमारी सतत शाश्वत भावांजलि!!!

मेरे विचार से हिन्दू धर्म का सौंदर्य समस्त को एक साथ आलिंगन करने में है....दूसरे में जो सारतत्त्व पाए जाते हैं वे सभी हिन्दू धर्म में एक साथ अनवरत वर्तमान हैं। जो इसमें नहीं पाए जाते हैं वे असार एवं अनावश्यक हैं।

—महात्मा गांधी

ज्ञानालोक की अर्चना का पर्व : ऋषि पंचमी

मानव-मन की अन्धकारमयी विकराल रात्रि के घनीभूत तमस को भेद कर जब सबसे पहले आलोक की प्रथम रश्मि फूट निकली होगी, वह क्षण धरती का सबसे बड़ा पर्व हुआ होगा और, जिनके मन में वह आलोक का उज्ज्वल झरना उमड़ पड़ा होगा, वही मानवता का पथ प्रदर्शन करने वाले महान् ऋषि बन कर पूजित हुए होंगे। इन्द्रिय और मन का निग्रह करके मौन साधना करने वाले मुनियों को अपने भीतर ही जब परम तत्त्व का दर्शन हो गया तो वे बोले बिना नहीं रह सके। उनकी आत्मा का संगीत ही उनकी वाणी से वाग्धारा सरस्वती बन कर निस्सृत हुआ और वे अनन्त मौन में लीन रहने वाले मुनि ब्रह्मदर्शी ऋषि बन गए। महामुनि यास्क का कथन है—

'ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः।'

अर्थात् वेदमन्त्रों का दर्शन कराने वाले तत्त्वद्रष्टा महापुरुष ही ऋषि हैं। भारत उन्हीं आलोकद्रष्टा ऋषियों की गौरवशाली सन्तान है, मानवता को सबसे प्रथम आलोक प्रदान करने वाले ऋषियों के हम वंशज हैं। इन्हीं महान् स्मृतियों को जगाने वाला तथा भविष्य में कर्तव्य का उज्ज्वल पथ दिखाने वाला ऋषि पंचमी पर्व भाद्रपद मास की शुक्ला पंचमी को आता है।

यह पर्व ऋषि-पूजन का पर्व है। वंश ब्रु वंश भी इसी दिन होता है। अपनी प्राचीन वंशावली का ज्ञान प्राप्त कर हमारे मन में गौरव जाग उठता है कि हम किन अलौकिक-अवतारी महापुरुषों की सन्तति हैं, किस वंश वृक्ष की हम एक लघु शाखा हैं, इन पंक्तियों के लेखक को जब भारद्वाज गोत्र का स्मरण हो आता है तो सहसा उसकी आंखों के सम्मुख एक दृश्य नाच उठता है कि उसका उन पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय भरद्वाज ऋषि से सम्बन्ध है जो सप्तर्षिमण्डल के एक प्रमुख ऋषि बन कर आज विश्व के नभोमण्डल में चमक रहे हैं। त्रिवेणी तट पर जिसका आश्रम था जहाँ स्वयं प्रभु रामचन्द्र महाराज वनवास काल में उनके अतिथि बनकर रहे थे। इन पावन स्मृतियों से तन-मन-प्राण पुलकित हो जाता है तथा आत्मा संकल्प करता है कि कभी भी जीवन के आचार-व्यवहार द्वारा भरद्वाज ऋषि के पवित्र गोत्र पर

लांछन न आने पावे। ऐसी पुनीत स्मृतियाँ मानव को पथभ्रष्ट होने से बचा लेती हैं तथा पतितों एवं भ्रष्टों के लिए भी पुनः उन्नति की उज्ज्वल आशा प्रदान करती हैं।

ऋषि पंचमी ऋषियों की अर्चना का पर्व है। ऋषियों का तर्पण किस वस्तु से किया जाए? ऋषि तो आप्तकाम, पूर्णकाम मुक्त पुरुष हैं। जब उन्हें कोई कामना ही नहीं तो उसकी तृप्ति कैसी और तर्पण कैसा? वास्तव में हम अपनी तृप्ति के लिए ही ऋषि-तर्पण करते हैं। इससे हमारी असीम कृतज्ञता का प्रकाश होता है तथा हमारे अपने ही हृदय की तृप्ति होती है।

सप्तर्षि मण्डल की चर्चा में ज्योतिष, इतिहास, धर्म और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय है। हरिद्वार से ऋषिकेश के मार्ग में सप्तर्षि मन्दिर का वह ऐतिहासिक स्थान है जहाँ सात महान् ऋषियों कश्यप, भरद्वाज, अत्रि, गौतम, जमदग्नि, विश्वामित्र और वसिष्ठ ने पुण्यसलिला भागीरथी गंगा का स्मरण कर प्रार्थना की कि वे (भगवती गंगा) उन सातों के आश्रमों के आगे से बहे। इस पर गंगामाता सात पृथक्-पृथक् धाराओं में बंट कर बहने लगी थी और आज तक वहाँ 7 धाराओं में ही बहती है। इस प्रकार नभ के सप्तर्षि मण्डल के सात नक्षत्रों ने भी आकाशगंगा को सात भागों में विभक्त किया था। सातों ऋषि भू, भुवः, स्वः, महा, जनः, तपः और सत्य के प्रतीक हैं तथा सृष्टि से सातों भुवनों, सातों द्वीपों, सातों समुद्रों तथा सातों वनों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। जैसे सप्त सिन्धु प्रदेश के सातों महान् ऋषि एक ही परम ब्रह्म की अर्चना करते थे वैसे ही सप्तर्षि मण्डल के सात नक्षत्र एक ही ध्रुव नक्षत्र, निश्चल, स्थायी तत्त्व की परिक्रमा करते रहते हैं।

कश्यप ऋषि मारीच ऋषि (जो ब्रह्माजी के मानसपुत्र थे) की महान् सन्तति हैं। दक्ष प्रजापति ने अपनी 13 कन्यायें इन्हें ब्याह दी। अदिति से समस्त देवता तथा बारह आदित्य हुए। दनु से दानवों का जन्म हुआ। सिंघका से व्याघ्र हुए। क्रोधा से असुर, विनता से गरुड, अरुणादि 6 पुत्र हुए। महामुनि कश्यप तथा अदिति के तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने 3 बार इनके यहाँ अवतार लिया। इन सबका बहुत बड़ा नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ हो सकता है जो विद्वानों की खोज का विषय है। भरद्वाज मुनि तो देवगुरु बृहस्पति के भाई हैं। प्रयाग में इन्हीं के आश्रम में हजारों ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करने आते थे। महर्षि अत्रि ब्रह्माजी के मानसपुत्र और प्रजापति हैं। इन्होंने भी भगवान् राम का वनवास में अतिथि सत्कार किया। इनकी पत्नी अनुसूया ने सीता को पातिव्रत्य धर्म का सुन्दर उपदेश दिया था। स्वयं त्रिदेवों ने इनके घर में जन्म लिया। विष्णु के अंश से भगवान् दत्तात्रेय हुए, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा का जन्म हुआ तथा शंकर के अंश से दुर्वासा ऋषि का जन्म हुआ।

गौतम ऋषि महान् वैदिक ऋषि हैं। प्रचलित गाथाओं के अनुसार इनकी पत्नी अहल्या पाषाण हो गई थी, जिसका भगवान् राम ने उद्धार किया था।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार न्याय दर्शन के रचयिता 'गौतम' वैदिक ऋषियों से भिन्न हैं।

जमदग्नि ऋषि भगवान् परशुराम के पिता थे तथा ऋषि विश्वामित्र के बहनोई थे। उनका तप, त्याग, ज्ञान एवं शौर्य अद्वितीय था।

विश्वामित्र ऋषि तो समूचे आर्यावर्त्त में सर्वाधिक प्रसिद्ध ऋषि हैं। वे वेदमाता गायत्री के द्रष्टा हैं। यज्ञ रक्षा के लिए वे राम-लक्ष्मण को लाए थे। क्षत्रियत्व से ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए जो इन्होंने महान् तप किए तथा उस मार्ग में जो-जो बाधायें आयीं वह एक अत्यन्त शिक्षाप्रद, रोमांचकारी इतिहास है।

महामुनि वसिष्ठ तो रघुकुल के महान् गुरु हैं। उन्होंने भगवान् राम का राजतिलक किया। प्रभु रामचन्द्र को योगवासिष्ठ में जो महान् ब्रह्मज्ञान गर्भित उपदेश महामुनि वशिष्ठ ने दिया है उसकी तुलना का उच्च ज्ञान तो त्रैलोक्य में भी मिलना कठिन है।

अपने ज्ञानालोक से वसुन्धरा को तथा अपने प्रभापुंज से स्वर्गलोक (अन्तरिक्ष) को ज्योतित करने वाली उन जगवन्दित ज्योतियों को, उन ज्योति विग्रह ऋषियों को हमारे ज्ञान पिपासु प्राणों की सर्वस्वांजलि सादर समर्पित हो।

हिन्दुत्व और भारत एक और अभिन्न है। मत भूलो! हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई अस्तित्व नहीं है।

—डॉ. एनी बीसेंट

सनातन भारत निर्जीव नहीं है। और न उसने अपना अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहा; वह जीवन्त है और उसे अपने लिये तथा मानव जाति के लिये अभी भी कुछ करना शेष है।

—ऋषि अरविन्द

शिक्षक दिवस

हे राष्ट्र-निर्माता एवं विश्व सभ्यता के दीक्षाता शिक्षक, तुम्हें प्रणाम हो। जैसे व्यास-पूजा गुरु पूजा का पावन दिवस है, आज 5 सितम्बर (डॉ. राधाकृष्णन जयन्ती) शिक्षक-समाज की प्रतिष्ठा एवं कर्तव्यनिष्ठा का दिन है।

हे लौकिक कर्तव्यों की शिक्षा देने वाले शिक्षक एवं अलौकिक दीक्षा देने वाले गुरु, सारी मानवता आपकी ऋणी है। हे शिक्षक! आप ज्ञान के समुद्र है। किन्तु यदि शिष्य रूपी पात्र झुके नहीं तो ज्ञान की अनन्त जलराशि की एक बूंद भी उसे प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसीलिए आज शिक्षक दिवस पर समग्र शिष्य समुदाय आपकी झुक-झुककर वन्दना कर रहा है।

हे महान् भारत के महान् शिक्षक, कभी तूने अपनी प्रतिभा के प्रकाश तथा अपनी त्यागमयी तपस्या द्वारा भारत को जगद्गुरुत्व के उच्चासन पर प्रतिष्ठित कर दिया था।

महर्षि अगस्त्य जैसे आदर्श शिक्षक बनकर आपने दुर्लंघ्य विंध्याचल को पार कर दक्षिणावर्त्त में प्रवेश किया, तमिल व्याकरण का संपादन किया, मदुरा में 'तमिल संगम' की स्थापना की, समुद्र पार कर मलाया तथा इंडोनेशिया में भारतीय संस्कृति की विजय-वैजयन्तियाँ फहराईं। तक्षशिला विश्वविद्यालय के शिक्षक के रूप में आप ही व्याकरणाचार्य पाणिनि एवं साम्राज्य-निर्माता चाणक्य के रूप में पूजित हुए थे, ऋषि आत्रेय एवं वैद्यराज जीवक के रूप में आपने ही तक्षशिला को आदर्श शिक्षा-केन्द्र बना दिया था। दुर्भाग्य से उस विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय को हूण आक्रान्ताओं ने उजाड़ दिया।

हे शिक्षक वृन्द! तक्षशिला के एक हजार वर्ष बाद बिहार में नालन्दा विश्वविद्यालय पुनः आप शिक्षकों के तपःतेज से चमक उठा। जहाँ देश-विदेश के ज्ञान पिपासु शिष्य आपके चरणों में बैठकर ज्ञान-साधना करते थे। दर्शन, तर्कशास्त्र, तत्त्वज्ञान, इतिहास, व्याकरण, संस्कृत, पाली, ज्योतिष, गणित, संगीत, ज्यामिति, तंत्र-चिकित्सा—सभी विषयों के पारंगत विद्वानों से विभूषित तथा 8 खण्डवाले विशाल 'रत्नोदधि' पुस्तकालय से सुशोभित नालन्दा विश्वविद्यालय विश्व का

अद्वितीय शिक्षा-तीर्थ बन गया था। नालन्दा के आप शिक्षकों ने ही एशिया में भी सांस्कृतिक दिग्विजय का चमत्कार कर दिखाया था। आचार्य शान्तरक्षित तिब्बत में, आचार्य अभयंकर गुप्त मंगोल देश में, चीनी यात्री ह्वेनसांग एवं इत्सिंग नालन्दा के शिष्य बनकर पुनः उत्तर एशिया में शिक्षक एवं आदर्श लोकशिक्षक बनकर प्रतिष्ठित हुए। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य अतिश दीपंकर श्रीज्ञान का नाम आज समस्त उत्तर एशिया का बच्चा-बच्चा पूजा भाव से जपता है। यह भारत के आदर्श शिक्षक का ही गौरव है।

हे भारत के तपस्वी-मनस्वी शिक्षक! जब पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के अज्ञानी एवं मन्दबुद्धि राजपुत्रों को शिक्षा देना असम्भवप्राय ही हो गया था, तो विष्णुशर्मा के रूप में आपने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उन्हें उत्तम शिक्षा दी। बच्चों की कबूतरों में रुचि देखकर आपने कबूतर पालने का घरौंदा बना दिया। कबूतरों की संख्या बढ़ने पर आपने बच्चों को गिनती सिखाई। कबूतरों की भिन्न-भिन्न पहचान के लिए उन पर वर्णमाला के अक्षर लिखकर वर्णमाला सिखा दी। फिर अक्षरों से शब्द और शब्दों से वाक्य। संख्याओं का जोड़-घटाव कबूतरों के घोसलों से प्रारंभकर धीरे-धीरे वास्तुकला तथा भवन-निर्माण प्रविधि सिखाई; फिर पशुओं की कथाएं सुनाते-सुनाते बच्चों को नीति और राजनीति की सर्वोच्च विद्या हितोपदेश एवं पंचतंत्र की रोचक कथाओं के माध्यम से पढ़ा दी। हे मूढ़ से मूढ़ को भी ज्ञानसम्पन्न बना देने वाले शिक्षक वरेण्य आपको मानवता का अशेष नमस्कार समर्पित हो।

हे भारत के आधुनिक आदर्श शिक्षक कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, योगीराज अरविन्द एवं डॉ. राधाकृष्णन—आपने पुनः भारत माता का मुख समुज्ज्वल किया।

हे वर्तमान पीढ़ी के शिक्षकगण! आज भारत को उठाने या गिराने का पूर्ण दायित्व आपके ऊपर है। प्राचीन काल में भारत ने आचार्य पैदा किये, जो अपने आचरण द्वारा शिक्षा देते थे। आज के कॉलेजों में मात्र व्याख्याता रह गए हैं, जो केवल व्याख्यान भर कर सकते हैं, किन्तु अपने प्रत्यक्ष आचरण द्वारा जाति को संस्कार एवं प्रेरणा देने में असमर्थ हैं। हे भारत भाग्य-विधाता शिक्षक समुदाय! देश ने अपनी सबसे मूल्यवान निधि (जीवित जागृत संस्कारक्षम युवापीढ़ी) को आपके हाथ में सौंप दिया है। यह आपके हाथ में है कि आप अपने जीवन की खुली पुस्तक से, अपने आदर्श आचरण से, अपने सात्त्विक समर्पण से, अपने आदर्श की ज्योति से उनके जीवनदीप को ज्योतित कर दें और इस राष्ट्र के वैभव का पुनरावर्त करें। इसके विपरीत यदि आप शिक्षा को मात्र व्यवसाय मान कर

व्यावसायिक ईर्ष्या-द्वेष से दग्ध मन वाले परस्पर निन्दा, चुगली, चरित्रहनन में लीन, शिक्षक के कर्तव्य को विस्मृतकर स्वार्थ भ्रष्ट कदाचार और क्षुद्र राजनीति की छल-छूतियों से दूषित होकर देश की युवापीढ़ी के सम्पर्क में आते हैं, तो आप पाठ्यपुस्तक से चाहे जो पाठ पढ़ाते रहें, आप अपने जीवन की खुली पुस्तक से राष्ट्र की भावी पीढ़ी को कुसंस्कारित कर समूचे राष्ट्र को पतन के महागर्त में धकेलने वाले बन जायेंगे।

हे शिक्षक वृन्द! शिक्षकों की महानता से शिक्षा का मान बढ़ता है और देश का अभ्युदय होता है और, शिक्षकों की क्षुद्रता से शिक्षा-क्षेत्र कलंकित होकर देश का महापतन होता है। हे सरस्वती के वरदपुत्र! हे जाति के संस्कार गुरु! एक बार आप अपने गौरव में प्रतिष्ठित हो जाएं तो सारा देश निश्चय ही गौरव गान गाता हुआ खड़ा हो जायेगा, और समूची मानवता के लिये मंगल महोत्सव आ जायेगा।

'यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' कहने की घोषणा का अधिकार रखता है अथवा जो कम-से-कम प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा बर्बर से सभ्य बनाया है, वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

—क्रूजर (Creuzer)

मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी आकर यह दिखा दे कि भारत के जातीय जीवन के अमुक युग में ऐसे अध्यात्मिक दिग्गज नहीं हुए जो पृथ्वी को आन्दोलित न कर सके हों... संसार पर उसका प्रभाव तो सर्वदा उस मृदु ओस की तरह रहा है जो न तो सुनाई पड़ता है और न दिखता ही है, पर जो धरती की सुंदर से सुंदर कलियों को खिला देता है—ऐसा प्रभाव जो स्वभावतः ही मृदु है, स्वदेश की सीमा लाँघ कर विदेशों में पहुँचने के लिए अवश्य कुछ अनुकूल परिस्थितियों की अपेक्षा रखता है, यद्यपि स्वदेश की सीमा में उसका असर सदा ही जारी रहा।

—स्वामी विवेकानन्द

कार्तिक माह पर्यावरण का माह है

कार्तिक माह पर्यावरण का माह है। पर्यावरण शुद्धि का माह है। आज देश का जनस्वास्थ्य एवं पर्यावरण की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है भारतीय परम्परा से कट जाने के कारण। पश्चिम की अंध नकल से विचारों में जो प्रदूषण आया है उसके कारण पर्यावरण की हानि हो रही है और हमारा स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है जिससे देश का जन-मानस पीड़ित और चिन्तित है।

हमारी मान्यता है 'एकोऽहम बहुश्याम'। एकाकी न रमते। इसलिए एक ही चेतन तत्त्व ने, ब्रह्म तत्त्व ने, आत्म तत्त्व ने अपने आपको जीव-जगत और ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त किया है। सृष्टि प्रभु का विराट रूप है इसलिए परस्पर जुड़े हुए हैं, एक-दूसरे पर अवलम्बित, एक-दूसरे के पूरक एक ही विराट सत्ता के अभिन्न अंग है। उसके किसी भी अंग पर प्रहार स्वयं पर प्रहार है जैसे हमारा शरीर एक अखण्ड और अभिन्न है, उसके किसी भी अंग पर चोट सारे शरीर में व्याप्त होती है।

चूंकि सारी सृष्टि प्रभु का विराट रूप है, उसका वैभव है हम सब (चराचर) उसके अभिन्न अंग परस्पर सम्बन्धित हैं अतः हिमालय हमारे यहाँ पर्वत नहीं देवात्मा हिमालय, नदियां मात्र जल की धाराएं नहीं हमारी माता है–गंगा, यमुना, सरस्वती हमारी माता है, तुलसी पौधा नहीं तुलसी माता है, गो माता है, धरती हमारी माता है, आकाश हमारा पिता है, वृषभ हमारा पिता है। इस प्रकार सारी सृष्टि अंगाअंगी भाव से जुड़ी हुई है। प्रकृति से हमारा नाता माता-पुत्र का है। माता की सेवा कर उससे पोषण पाने के अधिकारी बनते हैं, और प्रकृति माता सक्षम है अपने प्रसवित पुत्र-पुत्रियों के पोषण में, प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में। आवश्यकता सीमित होती है, इच्छाएं अनन्त हैं। एक की इच्छा की पूर्ति सम्भव नहीं है। हम भी तो आज कल एक-दो संतान को जन्म देते हैं। सात-आठ के स्थान पर ताकि ठीक ढंग से पढ़ा-लिखा सकें। पहले शिक्षा प्रायः निःशुल्क थी आज बहुत महंगी है। आवश्यकताएं बढ़ गयीं अतः हम एक-दो को जनते हैं।

फिर मानव भगवान की सर्वश्रेष्ठ कृति और उसे विवेक का वरदान होने से, विवेकी होने से सारी सृष्टि के योग-क्षेम का दायित्व उसका है। फिर प्रकृति लेन-देन से सुरक्षित होती है और संवर्द्धित होती रहती है। लेन-देन संतुलित रहने पर सृष्टि स्वस्थ रहती है। जाने-अनजाने प्रकृति, पशु-पक्षी हमें देते रहते हैं। उसे वापस लौटाने के लिए पंचमहायज्ञ की परम्परा जिसके द्वारा हम गाय, कुत्ते, कौए चींटी, सांप सबको अपना-अपना आहार देते हैं।

सारी सृष्टि का योग-क्षेम होता रहे, प्रकृति का लेन-देन संतुलित रहे इसलिए हमने अर्थ विकास का जो मॉडल स्वीकारा वह प्रकृति के अनुकूल और अहिंसक, कुटीर—लघु उद्योग, गो-पालन, बैल आधारित कृषि व्यवस्था को अपनाया था।

सेमिटिक परम्परा इससे भिन्न विचार रखती है। मनुष्य भगवान की श्रेष्ठ कृति, सृष्टि का मुकुट है, Crown है और सारी सृष्टि सहित नारी उसके उपभोग, सेवा के लिए है। प्रकृति माता नहीं शत्रु है, दासी है, वेश्या है और जो अपनी सम्पदा छुपाकर रखती है अतः उससे छीनना पड़ता है। पुरुष शरीर के अलावा किसी में आत्मा नहीं है। सृष्टि के साथ भोग्य-भोक्ता का सम्बन्ध है।

अतः उन्होंने अपने योगक्षेम के लिए जो अर्थ-व्यवस्था स्वीकारी वह प्रकृति के शोषण पर, व्यापक हिंसा पर, योग्यतम की रक्षा, बाकी सब योग्यतम के Tool बन जाएं, औजार बन जाएं, व्यापक पूंजी-निवेश और विशाल-विशाल उद्योगों के रूप में स्वीकार की। और प्रकृति से केवल लेने ही लेने की परम्परा, इन सबने पर्यावरण प्रदूषण, पृथ्वी, अन्न, जल, वायु-आकाश सबको प्रदूषित किया।

प्रकृति बेचारी नहीं ब्रह्म की महान् शक्ति है। अतः प्रकृति के नियमों के उल्लंघन से वह अनेक रूपों में दण्डित करती है। पश्चिम ने मात्र तीन सौ वर्षों के विकास में प्रकृति को क्षुब्ध कर दिया और भारत के लाखों वर्षों के उत्थान-पतन के दौर में प्रकृति क्षुब्ध नहीं हुई, और हम धन-वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया बने। इसलिए विदेशी आक्रमणों का तांता, इसी क्रम में अंग्रेज आए भारत की समृद्धि से प्रभावित होकर। अतः हमने जो अर्थ विकास का रूप स्वीकारा वह अहिंसा पर आधारित प्रकृति के दोहन पर आधारित होने से देश धन-धान्य, सुख सौख्य से भरा था।

यह शरीर शुद्धि का भी मास है। ग्रहण और निष्कासन दोनों संतुलित होना चाहिए। हम वायु के रूप में ऑक्सीजन (शुद्ध वायु) ग्रहण करते हैं। और कार्बनडायॉक्साइड (दूषित वायु) एवं अपान वायु का मलद्वार से निष्कासन करते हैं। मनुष्य दिन में औसतन 21 हजार 600 श्वास लेता है। प्रति चार सेकंड में श्वास भीतर जाकर ऑक्सीजन से रक्त की शुद्ध कर भीतर की गंदी वायु को लेकर

बाहर आ जाता है। फुफ्फुस से लेकर नासिका तक वायु का विशेष स्थान है। इसमें वायु चल रहा है। वायु पूरे शरीर में संचार करता है। पर इसका यह विशेष स्थान है। वायु के पांच प्रकार है—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। प्राण अन्दर जाने वाली वायु अपान बाहर निकलने वाली वायु समान बारीक नस-नाड़ियों तक अन्न-रस को पहुंचाने वाली वायु। व्यान-परिश्रम अथवा धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ाने के समय भार उठाने के समय ली जाने वाली वायु। उदान प्रणयनन या प्राण विसर्जन के समय निकलने वाली वायु।

शरीर में अग्नि तत्त्व विद्यमान है जठराग्नि में। सारे शरीर में माथे को छुएं, जबान को छुएं, हाथ को छुएं, पांव को छुएं साढ़े 98 डिग्री तापमान है। पर पेट की जठराग्नि ठण्डी हो जाए तो पूरा शरीर ठण्डा हो जाएगा। इसलिए सब जठराग्नि पर निर्भर है। वह साढ़े 98 डिग्री ऊपर या नीचे होना रुग्णता का लक्षण है।

हम जल पीते हैं। उसका सबसे बड़ा कार्य है अन्दर की नस-नाड़ियों को धोना, पेट को साफ रखना, गन्दगी को फुजला को मल-मूत्र पसीने के रूप में बाहर फेंक देना। जैसे घर में पानी के आने का एक नल है, पानी की निकासी का दूसरा नल है या नाली है। ऐसे ही मानव शरीर में जल डालते तो मुख से है पर निकलने का मार्ग अलग है और इसका सबसे बड़ा उद्देश्य सफाई है।

हम अन्न-दूध, फल मेवा मिष्टान्न ग्रहण करते हैं, उससे पोषण प्राप्त करते हैं फूजला के रूप में मल निष्कासन करते हैं। इसमें संतुलन होना चाहिए पर पश्चिम की अन्ध नकल पर अन्न, जल, वायु आदि सबको प्रदूषित कर लिया फलतः जो अन्न है वह हमें भाता नहीं, जो खाते हैं वह पचता नहीं, निकलता नहीं, दोनों के लिए दवा लेनी पड़ती है। अतः पश्चिम की अंध नकल छोड़कर अपनी गौरवमय परम्परा के अनुसार चलना चाहिए। ऐसे ही कारखाने में ईंधन डालते हैं और धुआं निष्कासन के लिए चिमनी होती है। ट्रेन, मोटर साइकिल, स्कूटर, टैक्सी सभी में यही सिस्टम है। हम शरीर से चार चीजें निष्कासन करते हैं। मल-मूत्र, पसीना, दूषित वायु कार्बनडायॉक्साइड नाक से अपान वायु गुदा मार्ग से। पूरे माह में सर्वाधिक उपवास की श्रृंखला लगभग 20-21 उपवास कन्या के लिए त्रिदिवसीय उपवास 'तुलसी तेला' आदि से मानव के शारीरिक व मानसिक विकास में निःसंदेह लाभदायक होता है। अतः इन व्रत उपवासों को रूढ़ि न समझकर इसे 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् आतुरस्य दोष प्रशमनं च' इस आयुर्वेद के लक्ष्य का प्रचार-प्रसार करना समय की आवश्यकता है।

भारतीय समाज शास्त्र के रचनाकारों ने इस देश की षड्ऋतुओं के अनुसार यहाँ की जलवायु, यहाँ की भौगोलिक स्थिति से निर्मित वातावरण आदि का सांगोपाग अध्ययन कर पूरे वर्ष भर के लिए पर्वों, व्रतों, उत्सवों व त्योहारों के रूप

में यहाँ की सभ्यता व संस्कृति का ताना-बाना इतनी चतुराई से बुना हैं कि वर्ष भर चलने वाले इन उपक्रमों के माध्यम से स्वतः ही यहाँ जन स्वास्थ्य एवं पर्यावरण का विकास बिना किसी प्रचार प्रसार के होता रहे। हमारे प्रत्येक त्योहार के पीछे वैज्ञानिक, भौगोलिक, पर्यावरणीय, मनोवैज्ञानिक, समाज वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवं दार्शनिक आधार हैं। हमारे कर्मकाण्ड में भी वैज्ञानिक आधार है जैसे तुलसी के साथ जल देना ताकि तुलसी को निगल लेवें। शिवाभिषेक के बाद बिल्व पत्र के जल का पान पेट के लिए लाभकारी है। और यह सब धर्म के साथ जोड़ दिया गया है।

कार्तिक माह में अनादिकाल से हमारे देश में दीपावली के पर्व पर घर-घर में सफाई की प्रथा चली आ रही है। यह सफाई श्रीमंतों के महलों से लेकर गरीबों की झोपड़ियों तक में बड़े मनोयोग पूर्वक बिना किसी प्रचार-प्रोत्साहन प्रलोभन के स्वयं प्रेरणा से होती आ रही है। यह पर्यावण परिष्कार का परम्परागत महा अभियान है।

वर्षा ऋतु की सीलन से अनेकों प्रकार के कीटाणुओं विषैले जीवाणुओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है जो पर्यावरण को प्रदूषित कर रोग की उत्पत्ति के कारण बनते हैं। ऐसी स्थिति में देशव्यापी सफाई अभियान से राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं पर्यावरण परिष्कार में निश्चित ही स्वतः सहयोग मिलता रहा है। अतः इस परम्परा के महत्त्व को समझकर इसका ठीक प्रकार से पुनर्विकास किया जावे तो राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं पर्यावरण विकास के लिए हितकर कार्य होगा।

देशव्यापी सफाई अभियान के पश्चात् अमावस्या के गहन तिमिर में आसेतु-हिमाचल सम्पूर्ण भारत (वसुंधरा) को मिट्टी से निर्मित दीपों में तिल के तेल की दीपावली जगमगा कर आसमान के सितारों से होड़ लेना निरा मनोरंजन या आमोद-प्रमोद का त्योहार नहीं है बल्कि यह गहरे चिन्तन मनन के पश्चात् चालू की गई देशव्यापी पर्यावरण सुधार की वैज्ञानिक योजना है जिससे बचे-खुचे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वातावरण शुद्ध हो जाता है। इसने भारतीय जन-जन को स्वस्थ, सुखी व शतायु बनाने में बड़ा सहयोग दिया है।

स्वास्थ्य एवं पर्यावरण विकास के साथ एक बहुत बड़ा पहलू जुड़ा हुआ है 'गो-संवर्धन का। क्योंकि बिना गोवंश के तो स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की योजना अधूरी ही रहेगी। गाय स्वयं में पर्यावरण का लघु संस्करण (मिनी बायोस्फेयर) है जिसमें भारतीय संस्कृति में पूजित तैंतीस करोड़ देवी देवताओं का वास है। विज्ञान की कसौटी पर भी यह तथ्य खरा उतरा है कि बाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष, स्वस्थ-रुग्ण सभी मानव-मात्र के लिए गो दुग्ध पूर्ण पौष्टिक आहार एवं उत्तम पथ्य है। इसलिए भारतीय समाज रचना में गाय को माता का स्थान प्राप्त हुआ और दीपावली के साथ ही गोवर्धन पूजा व गोपाष्टमी मनाये जाने की प्रथा से यह पता चलता है कि

स्वास्थ्य की साधना के साथ गाय की आराधना भी प्राचीन काल से इस देश में होती रही है। गाय का गोरस दूध, दही, छाछ, मक्खन जहाँ मानव के स्वास्थ्य के विकास में श्रेष्ठ आहार रहा है वहाँ गोबर धरती को उर्वरा बनाने और गोमूत्र कीटनाशक होने से पर्यावरण सुधार का ठोस आधार रहा है।

पर आज गाय हमारी मूर्खता से संकट में है। इस सन्दर्भ में भूतपूर्व राष्ट्रपति अबुल कलाम का कहना है 33 करोड़ देवी-देवताओं के निवास वाली गोमाता अपनी नासमझी के कारण संकट में है। विज्ञान की हर कसौटी पर खरी उतरने वाली भारतीय नस्ल की गाय और गोवंश पर आधारित कृषि संरक्षण को यदि बढ़ावा दिया जावे तो स्वास्थ्य सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, खाद्यान्न एवं पर्यावरण सुरक्षा की गारंटी दी जा सकती है तभी सक्षम और स्वावलम्बी भारत का निर्माण हो सकता है।

फिर शीतकाल आता है। साल भर में हमारे शरीर के स्वास्थ्य को जो क्षति हो जाती है उसकी पूर्ति के लिए और वर्षभर के लिए ऊर्जा संग्रहित करने के लिए इस समय हम मेथी के लड्डू, Dry Food आदि का सेवन विशेष रूप से करते हैं। शीतकाल में पाचन शक्ति प्रदीप्त रहती है, तेज रहती है, गरिष्ठ भोजन को पचाने में सक्षम रहती हैं और वर्षभर के लिए स्वास्थ्य का स्टोरेज हो जाता है। इस प्रकार हमारा सारा खान-पान स्वास्थ्य और पर्यावरण की दृष्टि से निर्धारित था। और शीतकाल स्वास्थ्य रक्षा और वर्धन का समय है, अवसर है।

आज पूरा विश्व पर्यावरण प्रदूषण पर चिन्ता कर रहा है। वहीं भारतीय जन-मानस जो जन्म से ही पर्यावरण पूजक और रक्षक रहा है यह हमारे धर्म का अनिवार्य अंग रहा है। पर्यावरण को धर्म व जीवन के साथ जोड़ दिया गया है।

परन्तु कालान्तर में हम भारतीय प्रथाओं में निहित सूक्ष्म तथ्यों से जन समाज का ध्यान हटकर केवल स्थूल कर्म-काण्डी भावना तक ही सीमित होता जा रहा है। अतः ह्रासोन्मुख जन स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के पुनर्वास के लिए इन परम्परागत प्रथाओं के महत्त्व के प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है।

उपरोक्त मान्यताओं की पुनर्स्थापना का प्रयास स्वयं-सेवी संस्थाएं समय-समय पर सार्वजनिक आयोजन द्वारा करती रही है।

मेरी राय है कि केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकार कार्तिक मास को राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं पर्यावरण विकास मास घोषित कर परम्परा से चले आ रहे इस अभियान में सहयोग के लिए धर्माचार्यों, अधिकारियों व अध्यापकों को प्रेरित करे तो राष्ट्रीय स्वस्थता, पर्यावरण सुधार व भारतीय संस्कृति के विकास में बड़ा योगदान हो सकता है। जनतंत्र का चतुर्थ पाद पत्रकार बंधुओं से भी मेरा निवेदन है कि इन परम्पराओं के वैज्ञानिक तथ्यों के प्रचार-प्रसार में सहयोग कर हम सबका उत्साह वर्धन करें।

शक्ति पूजा का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत महादेश को 'महामानवेर महासागर' कहा। विश्व की अनेक निराश्रित जातियों को यहाँ आश्रयस्थल मिला है। अतः भारत को अनेकानेक संस्कृतियों का पावन संगम-स्थल माना गया। किन्तु क्या भारतीय संस्कृति की सरिता केवल उधार लिए हुए जल से ही भरी हुई है? नहीं, ऐसा मानना तो सत्य का हनन करना होगा। जैसे अमर तरंगिणी—तरंगिणी सुरसरिता अपनी हजारों मील की लम्बी यात्रा में अनेकानेक नदी-नाले आत्मलीन करती हुई, उन्हें भी गंगा बनाती हुई निरन्तर प्रवहमान है वैसे ही भारतीय संस्कृति की मन्दाकिनी अपने भीतर आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों के श्रेष्ठ गुणों को आत्मसात् करती हुई निरन्तर जीवन रस से तरंगित हो रही है। डॉक्टर राधाकृष्णन के मतानुसार आज का हिन्दूधर्म आर्य एवं द्राविड़ संस्कृतियों के एकाकार हो जाने से बना है। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने भारतीय संस्कृति में आर्य, द्राविड़, आग्नेय, आस्ट्रिक, यूनान, मंगोल, शक, मुस्लिम तथा यूरोपीय तत्त्वों का सम्मिश्रण बताया है। किन्तु मेरा यह निर्भ्रांत मत है कि चाहे इस प्रकार की बीसियों जातियों का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा हो, पर भारत की आत्मा सदा भारतीय ही रही है तथा बाहर की संस्कृतियों का प्रभाव केवल संस्कृति के बाहरी कलेवर पर ही पड़ा है। वैदिक ऋषि हवन, यज्ञ आदि करते थे, पूजा-अर्चा द्रविड़ों से आई, तिलक, कुंकुंम, रोली, चन्दन, सिन्दूर लगाने की प्रथाएं द्रविड़ तथा आग्नेयों से आई। किन्तु इससे धर्म की आत्मा में कोई अन्तर नहीं पड़ा, केवल बाहर की प्रक्रिया बदल गई। जिस एक अनादि-अनन्त सत्ता के निमित्त हवन में हवि दी जाती थी, उसी के निमित्त पत्र, पुष्प, फल-जल चढ़ाया जाने लगा, उसी एक अविनाशी सत्ता की आरतियाँ उतारी जाने लगीं, उसका नाम स्मरण कर जप यज्ञ किया जाने लगा। इस प्रकार धर्म के पहनावे, कलेवर बदलते गए किन्तु धर्म की आत्मा सदा एकरस रही। भारत के 'भारत' रहने का यही महान् रहस्य है तथा भारतीय संस्कृति के अजर-अमर रहने का यही अद्‌भुत भेद है।

आज दुर्गा-अष्टमी अथवा अन्नपूर्णाष्टमी का परम पावन पर्व है। मानव की सहज जिज्ञासा होती है—इसका मतलब? सामान्य उत्तर है, 'शक्ति पूजा का

दिन।' प्रश्न उठता है यह शक्ति पूजा कब से आरम्भ हुई? शक्ति की दुर्गा रूप में उपासना कितनी पुरानी है? क्या यह आर्य धर्मानुकूल है अथवा प्रतिकूल? क्या यह प्रथा हमने किसी विदेशी से तो नहीं सीखी?

भारतीय संस्कृति के चार अध्याय में श्री दिनकर ने यह मत स्वीकार किया है कि आस्ट्रिक परम्पराओं में बैल पर चढ़े हुए देव तथा सिंह पर चढ़ी हुई देवी की कल्पना थी। अतः भारतीयों ने शिव एवं शक्ति का स्वरूप उनसे ही ग्रहण कर लिया होगा। मोहनजोदरो एवं हड़प्पा में शिव, रुद्र एवं मातृ-पूजन सम्बन्धी सामग्री निकली है। उन्हें देखकर कई विद्वानों का अनुमान है कि शक्ति पूजा आर्यों से पूर्व द्रविड़ों में प्रचलित थी। कइयों ने वैसी ही एक मातृशक्ति की मूर्ति सुमेरिया में प्राप्त कर यह अनुमान लगा लिया है कि मोहनजोदरो की सिन्धु सभ्यता सुमेरियन या बेबिलोनियन सभ्यता से प्रभावित थी किन्तु भारतीय पुरातत्त्व विभाग दिल्ली के डायरेक्टर डॉ. रामचन्द्रन ने अपने गहरे अनुशीलन के आधार पर यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि मोहनजोदरो की सिन्धु सभ्यता पूर्ण रूप से ऋग्वैदिक सभ्यता है। वहाँ से प्राप्त हुई मुद्राओं पर चित्रित चित्रों को उन्होंने ऋग्वेद के मन्त्रों का ही चित्र-संस्करण बताया है। अति प्रसिद्ध पशुपति का चित्र ऋग्वेद के एक मन्त्र के एक-एक शब्द से मिलता है।

ऋग्वेद विश्व के पुस्तकालयों की प्राचीनतम पुस्तक है। उसमें भगवान् शिव को त्र्यम्बक (त्रिनेत्र) कह कर उनकी वन्दना में 'त्र्यम्बकम यजामहे' इत्यादि ऋचायें हैं। यजुर्वेद में तो—

नमः शंभवाय च, मयोभवाय च।
नमः शंकराय च, मयस्कराय च।
नमः शिवाय च, शिवतराय च।

यह यजुष गा कर वैदिक ऋषियों ने भगवान् शिव को स्पष्ट ही आर्य जाति का उपास्य देव घोषित किया है। इसी की शक्ति 'दुर्गा' या 'उमा' की भी वेद मन्त्रों में बार-बार वन्दना की गई है। कृष्ण यजुर्वेद में लिखा है—

तामाग्निवर्णों तपसा ज्वलन्तीम्, वैरोचनीं कर्म फलेषु जुष्ठाम।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये, महेऽसुरान्नाशचित्र्यैते नमः।।

अर्थात् मैं उस अग्नि वर्ण वाली, अग्नि के समान तेजस्वी, अपने तप के तेज से जाज्वल्यमान, स्वयं प्रकाशमान, ईश्वर के साथ रमण करने वाली, कर्मों के फल को प्रदान करने वाली दुर्गा देवी की शरण ग्रहण करता हूँ। भवसागर से पार करने वाली उस देवी शक्ति को नमस्कार है।

शक्ति की वन्दना तो वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र गूंज रही है।

ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में ऋचा है—

'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो ब्रभूविथा, अधा ते सुम्नभीमहे' अर्थात् हे ईश्वर, मैं तेरी शरण में आता हूँ। तू ही मेरा पिता है तू ही मेरी माता है।

ऋग्वेद के मण्डल 3 में जगन्माता के वात्सल्य को प्रकट करने के लिए कहा गया है—

जैसे गौएं—'बछड़ों को प्रेम से चाटती हैं, वैसे ही हे महान् शक्ति मेरा और आपका प्रेम हो।'

केनोपनिषद् में जब इन्द्र अपनी विजय के पश्चात् गर्वित हो जाता है तो एक यक्ष प्रकट होता है। यक्ष इन्द्र से कहता है कि इस तिनके को हिला कर दिखाओ। सारे देवता अपना पूरा बल लगा कर भी उस तिनके को न हिला सकते हैं न उड़ा सकते हैं न ही जला सकते हैं। इस पर अन्तरिक्ष में भगवती उमा प्रकट होती है जो इन्द्र को समझाती है कि देवी शक्ति के बिना एक तृण भी नहीं हिल सकता।

मार्कण्डेय पुराण में तो दुर्गा सप्तशती के पूरे 700 श्लोकों का अनुपम साहित्य है। अपने राज्य रूपी रथ से भ्रष्ट होकर राजा सुरथ विरथ बन कर मेधा मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं। अपनी समाधि रूपी शांति को खो समाधि वैश्य भी व्याधि वैश्य बन कर भटकता हुआ मेधा मुनि के आश्रम में पहुँचता है। राज्य से भ्रष्ट या सम्पत्ति के भ्रष्ट होने पर मनुष्य को मेधा (बुद्धि) की शरण में ही जाना पड़ता है।

बुद्धि ही संकट में बचाती है। इसी मेधा को चमकाने के लिए हम गायत्री मंत्र में प्रार्थना करते हैं। वैदिक ऋषि भी इसीलिए गाते थे—

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यदिनंपरि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिर्भिवचसा वेशयामहे।।

'हे मेधा! सायं हो या प्रातः, हम दोपहर के सूर्य की किरणों द्वारा एवं वाणी की शक्ति द्वारा तुझे अपने भीतर धारण करते हैं।' इसी मेधा मुनि ने उन दोनों व्यक्तियों को मन की शान्ति के लिए दुर्गा सप्तशती की कथा सुनाई। इच्छानुसार नाम का दैत्य बड़ा भयंकर था। सब देवता उससे हार चुके थे। पृथक्-पृथक् करके सब ने अपना सामर्थ्य आजमा लिया था। अन्त में भगवान् विष्णु के सुझाव पर सभी ने अपने-अपने अंश का दान दिया और सब की संघशक्ति के रूप में देवी दुर्गा का अवतार हुआ। उसने दुर्ग राक्षस को मारा। सुन्द, उपसुन्द को मारा, महिषासुर को मारा, रक्तबीज को मारा तथा पुनः देवों को विजय दिलाई। अतः यह महाशक्ति राष्ट्र की सामूहिक शक्ति का सुन्दर प्रतीक है। 'संघे शक्ति कलौयुगे।'

उस शक्ति की वन्दना में कहा गया—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।।

जो चराचर के घट-घट में व्यापक विश्व की एकमात्र शक्ति है, उसी महाशक्ति को दुर्गा नाम से पूजा गया। यही ब्रह्मशक्ति, नारायणी, गौरी, शिवा, उमा, भवानी और काली है। लक्ष्मी और सरस्वती भी इसी शक्ति के दूसरे रूप हैं।

देवी भागवत में तो उसका सर्व रूप और निखर आया है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

इसी शक्ति को श्रद्धा, धी, विद्या, ज्ञान, आत्मा सभी कुछ कह डाला गया। शक्ति-सम्प्रदाय में इस शक्ति को विश्व की आद्याशक्ति माना गया। भारत भर में फैले हुए शक्तिपीठ शक्तिस्वरूपा भारतमाता के विराट् रूप के दर्शन कराते हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज इसी भवानी के भक्त थे। उसी माता से उन्होंने अपना महान् खड्ग प्राप्त किया था। गुरु गोविन्दसिंहजी ने अपने चण्डी नाटक में लिखा है—

नमो उग्रदन्ती अनन्त सवैया,
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी-वाहिनी शत्रु-हन्ती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़ंती।

गुरुनानक ईश्वर को माता रूप में सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

सुत अपराध करत हैं जेते,
जननी ध्यान धरत नहीं तेते।
तू जननी, हौं बालक तेरा,
काहे न खण्डसि औगुन मेरा।।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने उसी कालीमाता की आशिष् से वह परमहंस पद पाया था। उसी माता का संकेत करके स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं—

सारी दुनिया द्वारा ही क्यों, स्वयं अपने द्वारा भी तिरस्कृत सुत (पुत्र) के होंठ जब सूखने लगते हैं, तो जैसे वज्रहृदया माँ के भी स्तनों से वात्सल्य फूट पड़ता है, वैसे ही पतित से पतित व्यक्ति के लिए भी सत्य का हिमाचल अपने वक्ष में ज्ञान की गंगा छिपाए रहता है।'

योगीराज अरविन्द ने उसी दुर्गा माता को भारतमाता के साथ तदाकार देखा तथा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने वन्दे मातरम् में कहा 'तु मि माँ शक्ति तु मि दुर्गा।'

आश्विन मास की दुर्गाष्टमी दुर्गति नाशिनी दुर्गा के प्रादुर्भाव का दिन है तथा चैत्र शुक्ला अष्टमी (आज का दिन) अन्नपूर्णाष्टमी है, जो माँ शत्रुओं का नाश करके हमारी रक्षा करने वाली है, वही अन्न भण्डार से अपने पुत्रों का लालन-पालन भी करने वाली है। फसल पक कर गृहों में आ रही है। वह फसल, अन्न की खेती साक्षात देवी अन्नपूर्णा है। इस रूप में माता साक्षात शस्य-श्यामला भारत का ही रूप है।

गृह-गृह में 9 दिन श्रद्धा का नन्दा दीप जलता है। अष्टमी के दिन देवी का पूजन होता है। हमारी माताएँ अपने गले में दुपट्टा डालकर छोटी-छोटी बच्चियों के चरण धोती हैं, उनको तिलक करती हैं। उनका पूजन-वन्दन कर उन्हें कंजक (नवान्न की भेंट) समर्पण करती है। क्या जिस देश में वर्ष में दो बार नन्ही-नन्ही बालिकाओं का साक्षात माता जगदम्बा के रूप में पूजन होता हो, उस देश के वासी का नारी के प्रति कोई तुच्छ भाव हो सकता है? आज के पावन पर्व पर माता जगदम्बा को प्रणाम, अन्नपूर्णा को प्रणाम, भारतमाता को प्रणाम, नारी-जाति को प्रणाम, मातृशक्ति को प्रणाम।

सनातन धर्म ही हमारे लिये राष्ट्रीयता है। यह हिन्दू राष्ट्र सनातन धर्म को लेकर ही जन्मा है, उसी को लेकर यह चलता है और उसी को लेकर यह पनपता है। जब सनातन धर्म की हानि होती है, तभी राष्ट्र की अवनति होती है और यदि सनातन धर्म का विनाश सम्भव होता तो सनातन धर्म के साथ-साथ इस राष्ट्र का भी विनाश हो जाता। सनातन धर्म ही राष्ट्रीयता है।

—ऋषि अरविन्द घोष

राष्ट्रीय विजय का महापर्व : विजयादशमी

एक महान् राष्ट्रीय विजय का सात्त्विक आह्लाद राष्ट्र को चिरन्तन जीवी बनाने में समर्थ होता है। राष्ट्रों का जीवन विजय की संजीवन-प्रदायिनी भावना के हिंडोले में झूलता रहता है। निरन्तर प्रगति एवं प्रकर्ष विजय एवं विकास के डोरों से झूलता हुआ राष्ट्र अपनी गगनचुम्बी पेंग में ख्याति के सुनहले आकाश को भी चूम लेता है। किन्तु जिन राष्ट्रों की विजिगीषुवृत्ति मर जाती है वे राष्ट्र भी धीरे-धीरे काल के गाल में चले जाते हैं। बिना स्वाभिमान के राष्ट्र की मान-मर्यादा मिट्टी में मिल जाती है। दूसरी ओर, एक जीवित-जाग्रत स्वाभिमानी सत्त्व सम्पन्न राष्ट्र अपने मान बिन्दुओं की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहता है। जिस राष्ट्र का मान लुट गया उसके पास बचाने योग्य और कुछ नहीं बचा। हमारी विजयिनी हिन्दू जाति ने तो पराजय को पाप माना है। वेद भगवान् का भी विजय के लिए महान् आदेश है—

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो, हनो बृत्रं
जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्।।

(ऋग्वेद 1.80.3)

'हे वीर! आगे बढ़, शत्रु पर वार कर उसे परास्त कर दे। तेरे शस्त्र को कोई रोक नहीं सकता। शत्रु को झुका देने वाला बल तुम में विद्यमान है। देख, तेरी जिन प्रजाओं को शत्रु ने पकड़ कर कैद कर लिया है उन्हें शत्रु के हाथ से जीत ले। स्वराज्य का आराधक बन।

वेद के इसी महान् सन्देश को अपने राष्ट्र के इतिहास एवं संस्कृति में साकार करने वाला विजयादशमी का महान् पर्व हमारा राष्ट्रीय विजय पर्व है।

महिषासुर मर्दिनी दुर्गा का पर्व

बहुत प्राचीन काल में माँ दुर्गा ने इस दिन महिषासुर नामक बहुत भयंकर राक्षस पर विजय पाई थी। महिषासुर राक्षस बहुत अत्याचारी था। देवताओं ने उस पर विजय प्राप्त करने के लिए बहुत यत्न किया, किन्तु उसे विजित न कर सके।

सब देवताओं ने मिल कर विष्णु भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् ने कहा कि सभी देवतागण सम्मिलित रूप में अपनी शक्ति का अंश दें तभी महिषासुर को विजित किया जा सकता है। सभी देवताओं की सम्मिलित शक्ति से महाशक्ति दुर्गा का अवतार हुआ। विष्णु भगवान् ने उसको चक्र दिया, शंकर ने त्रिशूल दिया और इन्द्र ने अपना वज्र दिया। नौ दिनों तक वह शक्ति राक्षसों से युद्ध करती रही और उसने दुर्स, सुन्द, उपसुन्द, रक्तबीज इत्यादि कई राक्षसों का संहार किया। दसवें दिन उस दुर्गा माता ने भैंसे के आकार वाले महिषासुर राक्षस का वध कर दिया। इसीलिए आश्विन शुक्ल पक्ष की पहली तिथि से नवीं तिथि तक देवी के नवरात्र मनाए जाते हैं और दसवें दिन दुर्गा माता की विजय का पर्व विजयादशमी मनाया जाता है।

बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत में विजयदशमी को दुर्गा पूजा उत्सव के नाम से मनाया जाता है। कोलकाता नगर काली माता के नाम पर बसा हुआ है और मुंबई नगर मुम्बा देवी के नाम पर। पंजाब में नैना देवी, ज्वालामुखी, जम्मू-कशमीर में वैष्णो देवी, क्षीर भवानी इत्यादि कई देवी के स्थान हैं। कालिका में काली माता का मन्दिर है और चण्डीगढ़ चण्डी माता के नाम से प्रसिद्ध है।

कई विद्वानों का मत है कि असुर असीरीया देश के निवासी थे और देवतागण भारत के निवासी थे। जब असुरों ने भारत पर आक्रमण किए तभी देवासुर संग्राम हुए। भारत के मैसूर नगर के विषय में प्रसिद्ध है कि महिषासुर ने वहाँ अपना आधिपत्य जमा कर उसे अपनी राजधानी बना लिया और दुर्गा माता ने वहीं पर ही इसका संहार किया। मैसूर का दशहरा भारत भर में प्रसिद्ध है। वहाँ पर रामलीला के स्थान पर दुर्गा लीला होती है।

भिन्न-भिन्न देवियाँ वास्तव में एक ही शक्ति के नाम हैं। वही दुर्गा, विजया, गौरी, काली, अन्नपूर्णा, शारदा, सरस्वती, लक्ष्मी और उमा है। दुर्गा या रणचण्डी युद्ध की देवी है। इसे ही दशमेश गुरु ने चण्डी या भगवती कह कर स्तुति की है—

नमो उग्रदन्ती अनन्त सवैया, नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी वाहिनी शत्रु-हन्ती, नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़न्ती।।
नमो ऋद्धिदा सिद्धिदा, बुद्धि, दैनी, नमो कालके कालकी काल छेनी।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गांवें, सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेंद पावें।।

दुर्गा की महिषासुर पर विजय ईश्वरीय शक्ति की आसुरी शक्ति पर विजय है, सत्य की झूठ पर और पुण्य की पाप पर विजय है। शक्ति-पूजा में ईश्वर को माता मान कर पूजा जाता है। पिता कठोर मन वाला होता है, माता का हृदय कोमल होता है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है, 'सारे संसार द्वारा भी तिरस्कृत कुपुत्र के ओष्ठ जब सूखने लगते हैं तो जिस प्रकार वज्र-हृदया माता के स्तनों से

वात्सल्य प्रस्फुटित हो उठता है उसी प्रकार पतित से पतित प्राणी के लिए भी सत्य का हिमाचल अपने वक्ष में ज्ञान की गंगा छिपाए रखता है।'

अन्नपूर्णा के दर्शन

काका कालेलकर के विचारानुसार मानव सभ्यता की सर्वप्रथम और बड़ी विजय है—खेती की कला का विकास। सम्भवतः इसीलिए ही विजयादशमी से पूर्व नवरात्र में घर-घर में खेती बोई जाती है और उसकी पूजा की जाती है। लगातार नौ दिन नन्दादीप जलता रहता है। अष्टमी को छोटी-छोटी कन्याओं को बुला कर उनके चरण धोए जाते हैं और सभी माताएं अपने गले में दुपट्टा डाल कर उनके सामने अपना मस्तक झुकाती हैं और नवान्न की भेंट देती हैं। वही महाशक्ति जो दुर्गा रूप में युद्ध में रक्षा करती है वही अन्नपूर्णा बन कर भण्डार भरती है।

नौ रात्रियाँ और दसवां दिन

इस नवरात्र उत्सव के दसवें दिन दशहरा आता है। इस उत्सव का पहला भाग नौ रात्रियों का है तथा दसवें दिन जो उत्सव करना है वह दिन का करना है। स्वाभाविक ही यह प्रश्न निर्माण होता है कि 'नौ रात्रियाँ और दसवां दिन' ऐसा क्यों? श्रीयुत दामोदर सातवलेकर ने लिखा है कि पहले नौ अहोरात्रियों में केवल रात्रियों का उल्लेख है तथा दसवें अहोरात्र में केवल दिन का ही उल्लेख है। यह ऐसा क्यों? रात्रि तथा दिन का भेद यह है कि रात्रि में अन्धेरा हुआ करता है, मार्ग नहीं दिखाई पड़ता, चलने में रुकावट निर्माण होती है तथा डर लगता है, परन्तु दिन में मार्ग स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मनुष्य के अभ्युदय मार्ग में नौ रात्रि जैसी कठिनाइयाँ हैं और वे दूर हुईं, तो मार्गदर्शन के लिए प्रकाशमय दसवां दिन आता है, इससे जाकर मनुष्य को विजय प्राप्त होती है।

वीरता एवं विजय का पर्व

विजयादशमी क्षत्रियों का विशेष उत्सव है। भारत में क्षत्रियों की रचना धर्म के रक्षक के रूप में हुई है न कि हिंसक अत्याचारी के रूप में। चौमासे में क्षत्रियों की विजय यात्रा और वैश्यों की व्यापार यात्रा दोनों बंद रहती हैं। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि को जब आकाश में श्रवण नक्षत्र के उदय होने पर विजय योग होता है तो क्षत्रिय अपने दल सहित विजय यात्रा के लिए निकलते हैं। इसी को सीमोल्लंघन कहा जाता है। शिवाजी की सेना के वीर भी इसी दिन अपनी पगड़ियों में नई खेती की कोंपलें खोंस कर शत्रु को विजित करने के लिए निकलते थे। राजपूतों में इसी दिन अपने राज्य की सीमा से बाहर जाकर शत्रु को विजित करने की रीति थी। आज तक भी इस दिन शस्त्र पूजा की प्रथा चली आती है।

प्राचीन वैदिक मर्यादा के अनुसार इस दिन सेना के चारों अंगों (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल) को यज्ञशाला के सामने खड़ा करके आरती उतारी जाती थी।

शमी वृक्ष की पूजा का विधान

भारत में विजय केवल लोहे की ही नहीं होती थी, अपितु धर्म की विजय को ही सच्ची विजय माना जाता था। सूर्यवंशी राजा रघु ने सारी धरती की दिग्विजय कर के विश्वजित् यज्ञ किया जिसमें अपना सर्वस्व दान कर दिया। जंगल में रहते हुए राजा रघु के पास ब्रह्मचारी कौत्स पहुँचा। वह अपने गुरु को 14 करोड़ स्वर्णमुद्रा दक्षिणा में देना चाहता था। सर्वस्वदानी राजा रघु ने कंगाल होते हुए भी कुबेर को कहा और कुबेर ने एक शमी के वृक्ष से मुहरें बरसा दीं। ब्रह्मचारी कौत्स 14 करोड़ स्वर्णमुद्रा लेकर जाने लगा तो राजा रघु ने कहा—'ये सभी मुहरें तुम्हारे लिए ली गई हैं, तू सभी ले जा, मैं तो वनवासी हूँ। कौत्स ने कहा—'मैं आवश्यकता से अधिक एक भी मुहर अपने हाथ में नहीं लूंगा। 'तुम्हारे-तुम्हारे'—के इस झगड़े के पश्चात् वह धन प्रजा को लुटा दिया गया। कहा जाता है कि शमी वृक्ष से आज के दिन मुहरें बरसी थीं। इसीलिए आज के दिन शमी वृक्ष का पूजन होता है। उसके गोल-गोल पत्ते भी मुहर के समान दिखाई देते हैं। दियासलाई इत्यादि के आविष्कार से पहले शमी की टहनियों को रगड़ कर अग्नि प्रकट की जाती थी।

प्रभु रामचन्द्र की विजय-यात्रा

परम्परा से विजयादशमी का उत्सव रामचन्द्रजी की लंका विजय की स्मृति के रूप में मनाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि रावण का संहार आज के दिन नहीं हुआ। चौमासे के चार मास भगवान् राम पम्पासर में सुग्रीव के पास रहे। तत्पश्चात् हनुमान को सीता की खोज में भेजा। सीता का लंका में पता लग जाने पर आज के दिन भगवान् राम ने अपनी वानर सेना सहित पम्पासर से लंका की विजय-यात्रा आरम्भ की। इसीलिए यह राम का लंका विजय दिवस नहीं, विजय-यात्रा का दिवस है। नवरात्र में राम लीला होने के कारण रावण की मृत्यु प्रायः दशमी को दिखाई जाती थी। इस प्रकार विजयादशमी के साथ रावण, कुंभकरण और मेघनाद की मृत्यु का प्रसंग जुड़ गया है।

शत्रु का पुतला जलाने की प्रथा

'भविष्योत्तर पुराण' में विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बना कर उस के हृदय को बाण से बेधने का विधान लिखा है। सम्भव है कि पीछे से यह पुतला रावण का रूप समझा जाने लगा हो और उसको रामलीला के राम के हाथ से वध कराने की प्रथा चल पड़ी हो! भगवान् राम ने लंका पर चढ़ाई कर के सदा के लिए सारे संसार को यह चेतावनी दे दी कि जो कोई कभी भी भारत की किसी ललना

की ओर कुदृष्टि से देखेगा उसे रावण के समान कुल समेत नष्ट कर दिया जावेगा और उसकी सोने की लंका फूंक कर राख कर दी जावेगी।

बुद्ध जयन्ती

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि विजयादशमी का पर्व करुणावतार भगवान् बुद्ध का जन्म दिवस होने के कारण भी गौरवान्वित हुआ है। वैशाख पूर्णिमा को उन्हें बोध प्राप्त हुआ था। अंत में उसी दिन उन्हें महानिर्वाण भी प्राप्त हुआ था। श्रीयुत काका कालेलकर ने भी अपने ग्रन्थ 'जीवन का काव्य' में यही मत प्रकट किया है। जिस प्रकार दुर्गा माता ने महिषासुर पर विजय प्राप्त की, राम ने रावण पर विजय प्राप्त की और भगवान् बुद्ध ने मार (कामदेव) पर विजय प्राप्त की।

स्वामी मध्वाचार्य जयन्ती

विजयादशमी के महान् पर्व पर ही द्वैत-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य स्वामी मध्वाचार्यजी का जन्म भी माना जाता है। आचार्य प्रवर तेरहवीं शताब्दी में मद्रास के मंगलोर जिले में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने वेदान्त की द्वैत परक व्याख्या कर के आचार्य की पदवी को प्राप्त किया।

इस प्रकार विजयादशमी उत्सव पर शस्त्रों की झंकार के साथ त्याग, ज्ञान और करुणा की रागिनी भी बजती है। विजय के गीतों के साथ धर्म और नीति का सन्देश भी गूंज रहा है। शक्ति एवं भक्ति, बल एवं बुद्धि के समन्वय का यह एक अनूठा उत्सव है। विजय के इस महान् पर्व पर हम अपने अन्तर एवं बाहर के सभी शत्रुओं को विजय करने का शिव-संकल्प करें, व्यक्तिगत जीवन एवं राष्ट्रीय जीवन में विजिगीषुवृत्ति को जगाएं तथा व्यक्ति को इन्द्रियजय से प्राप्त मोक्ष एवं राष्ट्र को अरिमर्दन द्वारा सुलभ अखण्ड मुख सौख्य, सामर्थ्य एवं स्वातंत्र्य का परममंगलकारी दर्शन कराने का अटल व्रत धारण करें।

राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह भूखण्ड नहीं है, वाग्विलास नहीं है और न कोरी मानस-कल्पना है। वह महाशक्ति है जो राष्ट्र का निर्माण करने वाली कोटि-कोटि जनता की व्यष्टि की शक्तियों का समष्टि रूप है।...वह तीस कोटि जनता की व्यष्टियों की जीवन्त समष्टि है।

—श्री अरविन्द

राष्ट्र की जिजीविषा एवं विजिगीषा का महापर्व

श्री दुर्गा पूजा (विजयादशमी) राष्ट्र का महानतम विजय पर्व है। वृत्रासुर पर इन्द्र की विजय, महिषासुर पर दुर्गा की विजय, रावणासुर पर राम की विजय का स्मारक यह महापर्व हमें राष्ट्र की जिजीविषा (जीने की इच्छा) एवं विजिगीषा (जीतने की इच्छा) का सन्देश देता है। क्या भारत राष्ट्र जीवित रहेगा या यूनान, मिस्र, रोम, बेबिलोनिया जैसे अनेक प्राचीन-ऐतिहासिक राष्ट्रों के समान यह भी जीवित राष्ट्र न रहकर अतीत-इतिहास का विषय मात्र रह जायगा? क्या यह राष्ट्र अधर्मी, अन्यायी, आततायी शक्तियों पर विजय प्राप्त करेगा या स्वयं अत्याचारी, क्रूर, आक्रामकों की कुटिल-कठोर ठोकरें खा-खा कर पतित-पराभूत, परतन्त्र ही होता रहेगा? इस महान् विजय पर्व पर प्रत्येक भारतीय को प्रामाणिकता से, निष्पक्ष, गंभीर चिंतन कर अपने राष्ट्र की जिजीविषा एवं विजिगीषा का विचार करना चाहिए। यह जीने और जीतने का संकल्प ही दुर्गापूजा-विजयादशमी का महानतम वरदान है। दुर्गा पूजा के इस सारतत्त्व को छोड़कर केवल उसके बाह्य आडम्बर, साज-सज्जा, मेला-तमाशा, खान-पान, उत्सव-पटाखा पर राष्ट्र की अधिकांश जनशक्ति, मनःशक्ति, धन-शक्ति एवं काल-शक्ति का व्यय केले के सुस्वादु खाद्य फल को छोड़कर केवल उसका छिलका चबाने के तुल्य है।

हिन्दू का नाश हिन्दुस्तान का विनाश

संस्कृति ही राष्ट्र की आत्मा है, देश का भूखण्ड तो उसका बाह्य शरीर मात्र है। बिना आत्मा के शरीर के मृत होने के समान जहाँ भारतीय संस्कृति विस्मृत या विलुप्त हो जाती है वहाँ भारत भारत ही नहीं बचता, स्वदेश विदेश बन जाता है। कभी गान्धार (अफगानिस्तान) भारत का ही अंग था। गान्धारी भारतीय नारी थी विदेशी नहीं, संस्कृत के महानतम वैयाकरण ऋषि पाणिनि भारतीय ऋषि थे अभारतीय नहीं, किन्तु हिन्दू संस्कृति के लोप होते ही वह अपना देश पराया शत्रु देश बन गया जिसने बार-बार भारतमाता पर क्रूर आक्रमण किये। सोमनाथ, कांगड़ा, मथुरा के मंदिरों को तोड़ा, देश को लूटा, नारी जाति का सम्मान लूटा, पृथ्वीराज की आंखें निकाली तथा भारत पर विदेशी संस्कृति जबर्दस्ती थोपने के लिए क्रूरतम कर्म किए।

आज हमारे जीते-जी, हमारी आंखों के सामने, हमारी नसों में जवानी का गर्म खून बहते हुए भी, हमारी मातृभूमि का एक-चौथाई भाग सन् 1947 में कट कर अलग हो गया। आज पाकिस्तान एवं बांग्लादेश भारत के लिए परदेश, विदेश ही नहीं वरन् शत्रु देश बन गये हैं। इतिहास साक्षी है कि हिन्दू का अल्पसंख्यक होना हिन्दुस्तान के लिए संकट एवं हिन्दू संस्कृति का नाश हिन्दुस्तान का विनाश बन जाता है।

मीनाक्षीपुरम चेतावनी

आज मीनाक्षीपुरम में निर्धन हिन्दुओं का सामूहिक धर्मान्तरण राष्ट्र के ऊपर आने वाले एक बहुत गम्भीर संकट की चेतावनी है। अरब देशों ने लंदन की एक गोष्ठी में विचार किया कि आगामी 20 वर्षों में फारस की खाड़ी का तैल भंडार धीरे-धीरे भारत के पश्चिमी तट की ओर चला जायगा। परिणामस्वरूप तैल भंडार सूख जाने से अरब देश कंगाल हो जायेंगे तथा भारत तैल भंडार से धनवान बन जायगा। उन्होंने विचार किया कि 20 साल पश्चात् उनकी संतानें क्या केवल बालू खाकर जीवित रह सकेंगी? पहले उन्होंने योजना बनायी कि भारत के पश्चिमी तट के साथ-साथ कुछ बड़े उपजाऊ भूखण्ड खरीदे जाएं और उन्होंने बहुत ब़डी जायदाद खरीद भी ली। उन्होंने पुनः विचार किया कि भूमि में धन का विनियोग करने के स्थान पर यदि व्यक्तियों में धन का विनियोग किया जाय तो अधिक लाभकारी होगा। उन्होंने तर्क दिया कि वे एक-चौथाई भारत का इस्लामीकरण करने में पहले ही सफल हो चुके हैं। यदि वे भारत के 8 करोड़ हरिजनों (हिन्दुओं) को प्रलोभन देकर मुसलमान बना लेते हैं तो वे पुनः 20 करोड़ हो जायेंगे तथा वे भारत में किरायेदार के रूप में न रहकर स्वयं एक बहुत बड़ा इस्लामी देश प्राप्त कर देश के शासक बन जावेंगे। आज देश के 15 जिले मुस्लिम बहुल हो चुके हैं, 30 जिले क्रिश्चियन बहुल बन चुके हैं। काश्मीर मुस्लिम बहुल प्रदेश बन चुका है, नागालैण्ड, मिजोरम, मेघालय, पाण्डिचेरी, गोआ, केरल का अधिकांश भाग क्रिश्चियन बहुल हो चुका है।

विजयादशमी मनाने वाले हिन्दू को विचार करना है कि क्या भारत बचेगा और क्या भारत विजयशाली होगा? यह गंभीर प्रश्न है। जिसका उत्तर इन्द्र, दुर्गा एवं श्रीराम के भक्तों को देना है। तभी उनकी दुर्गा पूजा सार्थक होगी अन्यथा निरर्थक पूजा करते-करते दुर्गाभक्तों एवं रामभक्तों की संख्या घटती चली जायगी। यह हिन्दुस्तान ही मिट जायगा तो दुर्गा पूजा कहाँ होगी? क्या आज ढाकेश्वरी देवी के मंदिर (ढाका) में गो-वध की घटनाओं से, कन्याकुमारी को ईसाई तीर्थ कल्लीमेरी (ईसा माता मेरी) का तीर्थ बनाने के प्रयास से हिन्दू की आलस्य निद्रा भंग होगी?

निर्धन देश, समस्याग्रस्त समाज और आडम्बरयुक्त पूजा महोत्सव

किसी समय भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। किन्तु लगभग 1300 वर्षों की लम्बी पराधीनता, विदेशी आक्रान्ताओं की भयंकर लूट एवं भारतीयों के जीवन में घुस जाने वाली तमोगुणी अकर्मण्यता तथा विवेकहीन फिजूलखर्ची के कारण आज खंडित भारत सोने की चिड़िया के स्थान पर मिट्टी की टूटी हुई चिड़िया बन गया है। संसार के धनी देशों की तालिका में (संसार के 150 देशों की सूची में) जहाँ अमेरीका प्रथम स्थान पर आता है वहाँ भारत उक्त तालिका में नीचे से लगभग दसवें स्थान पर आता होगा। आज देश में साठ प्रतिशत से अधिक लोग निर्धनता की रेखा से भी नीचे का जीवन जी रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि उन्हें सिर ढकने को झोंपड़ा, तन ढकने को चिथड़ा और पेट भरने को टुकड़ा तक भी उपलब्ध नहीं है।

देश के करोड़ों वनवासियों की दशा बड़ी दयनीय है। लगभग 5 करोड़ वनवासी बीहड़ जंगलों में, दुरूह गिरि-पर्वतों में, नागरिक सभ्यता से युगों दूर कीचड़ एवं धूल भरी पर्णकुटियों के अस्त-व्यस्त ग्रामों में, नगरवासियों द्वारा शोषित, शिक्षा से वंचित, अभाव से पीड़ित, रोग-संत्रस्त, पत्तों की लंगोटी लगाए पुरुष तथा वस्त्राभाव में नग्नवक्षा नारियाँ, अधभूखे, अधनंगे, क्रन्दन करते उपेक्षित बच्चे—आज के वनवासी जीवन का यह दृश्य कितना अश्रुप्रेरक है! यह करुण दृश्य तब और भी भयंकर बन जाता है जब इन जनगण उपेक्षित एवं सरकारी अनुदानों से वंचित-दु:खी, भोले-भाले लोगों की विवशता का शोषण कर विदेशी पादरी मुट्ठी भर अन्न के लोभ से आटे के पैकेट और सोयाबीन तेल के प्रलोभन से उनकी देशनिष्ठा एवं धर्मनिष्ठा लूट कर इन भारतमाता के पुत्रों को भारत का ही शत्रु बना देते हैं। नागालैंड, मिजोरम एवं मेघालय की भीषण स्थिति एवं छोटानागपुर की भयंकर गतिविधि किसी भी देशभक्त नागरिक की नींद हराम करने वाली है।

दस वर्ष पूर्व 'दैनिक सर्चलाइट' पटना में समाचार प्रकाशित हुआ था कि छोटानागपुर में प्रतिदिन साढ़े तीन सौ व्यक्ति धर्मान्तरण द्वारा ईसाई बनाए जा रहे हैं। इस हिसाब से आजकल दैनिक धर्मान्तरण की संख्या पांच सौ या छ: सौ से कम नहीं होगी। जिस देश में प्रतिदिन सहस्रों लोगों का धर्मान्तरण द्वारा राष्ट्रान्तरण कर उनके मन में देशद्रोह के बीज बोए जा रहे हैं, उस देश का भविष्य कितना चिन्ताजनक होगा?

देश के करोड़ों हरिजनों की दशा भी चिन्ताजनक है। हजारों वर्षों से समाज द्वारा उपेक्षित रहने के कारण उनके मन में भी हीनभावना की ग्रन्थि पैठ गई है। कहीं-कहीं राजनीतिक स्वार्थों के लिए वर्गसंघर्ष को भड़का कर हरिजनों पर अत्याचार कराए जा रहे हैं। कहीं प्रतिक्रिया में हरिजनों को उत्तेजित कर बड़े अशोभन कृत्य करवाए जा रहे हैं। एक तो पहले ही युगों की निर्धनता, फिर हीनभावना ग्रन्थि, फिर समाज एवं सरकार की उपेक्षा, फिर दुष्ट प्रेरित वर्गसंघर्ष और तिस पर भी कम्यूनिस्टों एवं क्रिस्तानों द्वारा अपने दल के स्वार्थ अथवा पन्थ के स्वार्थ के लिए निर्धन हरिजनों का शोषण—यह परिस्थिति प्रत्येक देशभक्त नागरिक के लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

गुजरात में मोरवी की बाढ़ में सहस्रों नागरिक डूब गए तथा पूरा नगर ध्वस्त हो कर एक प्रेतनगर बन गया है। वहाँ के लाखों नागरिक, नर-नारी, बच्चे गृहविहीन तथा आश्रयविहीन, आहत एवं रोगी—सब भारत के करोड़ों देशवासियों की ओर सहायता की याचनाभरी दृष्टि से ताक रहे थे, राजस्थान में अजमेर की बाढ़ ने भी हजारों लोगों को विपन्न एवं विस्थापित कर दिया।

देश में जहाँ अतिवृष्टि से कहीं-कहीं प्रलयंकारी बाढ़ आ गई, वहाँ देश के अधिकांश भाग में इस दशाब्दी के भयंकरतम सूखे से देश में भुखमरी का भयानक दैत्य सामने मुँहबाये खड़ा है। इस सूखे एवं अकाल का भी अनुचित लाभ उठा कर विदेशी पादरी अन्न के प्रलोभन से देश की श्रद्धा पर डाका डालते हैं। जो अकाल भारत के लिये अभिशाप बन कर आता है वही विदेशी पादरियों के भारत-द्वेषी कार्यों के लिये सबसे अनुकूल समय होने के कारण उनके लिये वरदान बन जाता है।

नारी-जाति की असुरक्षा व अवमानना

नारी-जाति अपने आप में एक बहुत बड़ी समस्या से ग्रस्त है। किन्तु उसमें भी विधवाओं एवं असहाय नारियों की समस्या सबसे भयंकर है। वे असहाय माँ-बहिनें एवं बेटियाँ उचित सहायता के लिए हमारी ओर याचनाभरी दृष्टि से लोकलाज की मूक वाणी में कुछ कह रही हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में भी कोई नारी-निकेतन या विधवा आश्रम नहीं है। विधर्मी विदेशी प्रचारक विधवाओं की असहायता का भी अनुचित लाभ उठाकर महिला कल्याण के नाम पर देश की पुत्रियों के ईमान पर डाका डालते हैं। व्यक्तियों के धर्मान्तरण से विदेशी मत की सरल गणितीय वृद्धि होती है किन्तु महिलाओं के धर्मान्तरण से भावी परिवारों के धर्मान्तरण की सम्भावना के कारण ज्यामितिक गुणनशील चक्रवृद्धि होती है।

रोगी सेवा का अभाव

देश में करोड़ों रोगी हैं जो अर्थाभाव, साधनाभाव, औषधि अभाव तथा परिचर्याभाव के कारण जीवन और मृत्यु के बीच में झूल रहे हैं। उनकी विवशता का भी अनुचित लाभ उठाने हेतु विदेशी पादरियों ने अस्पतालों का जाल फैला

रखा है। वे तन का उपचार करते हुए मन की श्रद्धाओं पर ऐसा अत्याचार करते हैं कि गांधीजी की शब्दावली में कहना पड़ता है—'The cure in worse than the disease—अर्थात् ऐसा इलाज रोग से भी अधिक भयंकर है।' यदि विदेशी सात समुद्र पार से आकर अपने पंथ प्रसार हेतु हमारे रुग्ण बन्धुओं को अपने जाल में फंसाने के लिये अस्पतालों का बड़ा जाल फैला सकते हैं तो क्या हम भारतीय स्वयं अपने देश बान्धवों के स्वास्थ्य कल्याण एवं औषधि उपचार हेतु छोटानागपुर में उत्तम स्तर के कुछ नि:शुल्क चिकित्सालय स्थापित नहीं कर सकते?

शिक्षा का अभाव

शिक्षा ज्ञान का चक्षु है। इसके बिना राष्ट्र अन्धा-सा रहता है। दुर्भाग्य से हमारे इस विशाल देश में 75 प्रतिशत से अधिक लोग अभी तक अनपढ़ हैं। इस क्षेत्र में भी हमारी अकर्मण्यता एवं सरकार की उपेक्षा तथा जनसाधारण के अज्ञान का पूरा लाभ भारत-द्वेषी विदेशी मिशन उठा रहे हैं। बालशिक्षा, उच्चशिक्षा एवं प्रौढ़शिक्षा—तीनों के माध्यम से वे भारतीयों को विदेशी संस्कार देने का व्यापक अभियान चलाये हुए हैं। क्या मिशन के स्तर का अथवा उससे ऊँचे स्तर का एक-एक आदर्श विद्यालय छोटानागपुर के सभी बड़े नगरों में स्थापित करना हमारे लिये असम्भव है?

भुखमरी की समस्या

देश में भिखारी समस्या भी बड़ी विकट है। लगभग 56 लाख तो साधु वेशधारी भिक्षुक हैं। उनमें से अधिकांश पेट भरने के लिये ही साधु बने हुए हैं, साधना करने के लिये नहीं। साधुओं के अतिरिक्त भी लाखों निर्धन भिखमंगे हैं जो सड़क किनारे पटरी पर सो जाते हैं। पैसा-पैसा मांगकर पेट पालते हैं और चिथड़ों से तन ढकते हैं। आंधी, धूप और वर्षा में उनके पास सिर ढकने का स्थान भी नहीं। क्या उनके लिये हम एक रैन बसेरा तक भी नहीं बना सकते?

बच्चे देश की हरी पौध है। वे ही कल के नागरिक होंगे। देश का भविष्य उन्हीं की मुट्ठी में है। वर्तमान वर्ष अन्तरराष्ट्रीय बाल वर्ष भी है। दुर्भाग्य से देश में करोड़ों अनाथ बच्चे हैं जो माता-पिता तथा अभिभावक के अभाव में अपने नन्हे नेत्रों में दयायाची अश्रुकण भरकर हमारी ओर ताक रहे हैं। दुर्भाग्य से रांची एवं छोटानागपुर में कोई भी उत्तम स्तर का अनाथालय नहीं है और हमारी इस अकर्मण्यता का पूरा लाभ विदेशी पादरी उठा लेते हैं तथा अनाथालयों में शैशव से ही विदेशी संस्कार देकर भारतमाता के लाडलों को धीरे-धीरे पूर्णतया देशद्रोही बना देते हैं। मध्यप्रदेश के कुछ स्थानों पर भील जाति के वनवासियों को विदेशी पादरी दस-दस रुपया उधार के बदले उनके नन्हे शिशुओं को जमानत के रूप में बन्धक रख लेते हैं और इस प्रकार सैकड़ों बन्धक रखे हुए बच्चों को विदेशी संस्कार देकर तथा गो मांस खिलाकर पूर्णतया विधर्मी बना लिया जाता है। जिन भीलों ने महाराणा प्रताप के लिये प्राण उत्सर्ग किये, जिस भीलनी की कुटिया

पर भगवान् राम ने जूठे बेर खाये उनकी संतानें आज भेड़-बकरी की तरह बंधक रखकर विधर्मी एवं देशद्रोही बन जाये तो इससे बड़ा दु:ख और क्या हो सकता है!

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि एक निर्धन देश के नागरिक होते हुए वनवासियों, हरिजनों, बाढ़ग्रस्तों, सूखाग्रस्तों, अभावग्रस्तों, रोगग्रस्तों, अज्ञान-ग्रस्तों, विधवाओं, अनाथों—सबके हाहाकार की घोर उपेक्षा कर हम दुर्गा-पूजा, दशहरा, दीवाली के पर्वों पर अरबों रुपया केवल पूजा के बाह्य आडम्बर, साज-सज्जा, तड़क-भड़क, बाहरी चकाचक, क्षुद्र प्रतिस्पर्धा एवं कुछ इने-गिने दिनों की शानशौकत पर स्वाहा कर डालते हैं, जिसका सामाजिक लाभ शून्य ही प्राप्त होता है। राँची में ही सैकड़ों स्थानों पर बड़े-बड़े, विशाल मूर्ति पूजा मंडप लगाये गये हैं।

श्रीदुर्गा : संगठन की महाशक्ति

दुर्गा माता तो वास्तव में संगठन की देवी है। सभी देवताओं की सामूहिक शक्ति से महाशक्ति दुर्गा का अवतार हुआ था। किन्तु आज दुर्गा पूजा के नाम पर एक ही मुहल्ले में एक ही दीवार के दायें और बायें मात्र दस गज की दूरी पर अलग-अलग दुर्गा बिठाने वाले आज दुर्गा को संगठन की देवी के स्थान पर विघटन की देवी भर बनाने की कुचेष्टा कर रहे हैं। फिर एक-एक पूजा पर पचास-पचास हजार रुपया चार-छः दिन में फूंक कर बड़े तालाब में विसर्जित कर दिया जायेगा। क्या एक निर्धन, भयंकर समस्याग्रस्त एवं विदेशी एवं विधर्मियों के देशद्रोही कुचक्रों से घिरे हुए देश की ऐसी भयंकर विवेकशून्य फिजूल खर्ची को, आत्म प्रवंचना को वनवासी या हरिजन क्षमा करेंगे, क्या बाढ़ग्रस्त एवं सूखा पीड़ित नर-नारी क्षमा करेंगे? क्या रोगी एवं भिखारी, क्या विधवायें एवं अनाथ बच्चे क्षमा करेंगे? क्या इतिहास क्षमा करेगा? क्या भारतमाता अथवा भगवती दुर्गा माता क्षमा करेंगी?

मेरी हार्दिक विनती है कि इस वर्ष सभी दुर्गापूजा समितियों को वनवासी व हरिजन कल्याण, बाढ़ व सूखा कल्याण, रोगी व भिक्षुक कल्याण, अनाथ एवं विधवा कल्याण कार्यों के लिये अपने अनुमानित व्यय का कम से कम 10 प्रतिशत बचाकर दान करना चाहिये और भविष्य में रांची, डोरंडा एवं धुर्वा में कुल मिलाकर 10 सार्वजनिक दुर्गापूजा महोत्सव करने चाहिये और बाह्याडम्बर का व्यय बचाकर जगन्माता, भारतमाता के अभावग्रस्त पुत्र-पुत्रियों के कल्याण हेतु समर्पित करना चाहिये। उन्हें अपने नगर एवं गाँव के इर्द-गिर्द चुनकर उन गाँवों में जाकर दुर्गापूजा आयोजन करना चाहिये जहाँ युगों से अभाव एवं निर्धनता के कारण कभी दुर्गापूजा नहीं हुई। समाज के एक निर्धन वर्ग को भुखमरी के महिषासुर से तथा धर्मान्तरण की दुर्गति से बचाना सच्ची दुर्गापूजा होगी। भारत की अपहृत संस्कृति रूपी सीता माता को सम्मान सहित पुनः प्रतिष्ठित करना तथा संस्कृति के शत्रु रावणासुर का कलेजा चीर डालना ही सच्चा विजयादशमी पर्व होगा। तभी सारे भारत के कोटि-कोटि नर-नारी को दुर्गापूजा, विजयादशमी की मंगल बधाइयाँ सार्थक होंगी।

भारतीय संस्कृति की आलोक मधुर पर्व-मालिका : दीप माला

दीपमालिका हमारा राष्ट्रीय ज्योतिपर्व है। वेद की पावन ऋचा है—'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' प्रत्येक प्राणी अन्धकार से प्रकाश में आने के लिए छटपटाता रहता है। ज्योति की भूख, प्रकाश की लालसा, आलोक की आकांक्षा प्रत्येक आत्मा की प्रबलतम आन्तरिक प्रेरणा है। मानवात्मा की इसी महान् प्रेरणा के आलोक में कोटि-कोटि दीपों से जगमगाता हुआ दीपमालिका का प्रकाशमान पर्व आया है। यह अंधकाररूपी वृत्रासुर पर इन्द्र की विजय का दिन है, तमसरूपी नरकासुर पर ज्योतिस्वरूप श्रीकृष्ण की विजय का दिन है। असुरराज बलि की आसुरी माया को अपने त्रिपाद से कुचलने वाले त्रिविक्रम वामन के विक्रम का भी दिन है, रावण के पापाचार की अमावस्या का नाश कर सूर्य वंशावतंस रघुकुल गौरव रामचन्द्ररूपी सदाचार सूर्य के अपने सहस्र रश्मि आलोक के साथ उदय होने का पुण्य-पावन पर्व है।

जहाँ हमारी जाति के अन्य पर्व तो एक-एक प्रकाशमान दीपक के तुल्य हैं, वहाँ दीपमालिका का पर्व तो हमारे सांस्कृतिक पर्वों की माला, पर्व-मालिका ही है। जितने अधिक पर्व इस उत्सव के साथ सम्बद्ध हो गए हैं, उतने कदाचित ही किसी अन्य दिवस के साथ हुए हैं।

गोवत्स द्वादशी

कार्तिक अमावस्या से दो दिन पूर्व कार्तिक कृष्णा द्वादशी को 'गोवत्स द्वादशी'—का पावन पर्व आता है इस दिन गौ एवं बछड़े की पूजा की जाती है। गाय तो भारतीय संस्कृति की मूर्तिमान सात्त्विकता है। यह उसी की पूजा है। वत्स को चाटती हुई गाय का दर्शन तो एक हृदयस्पर्शी काव्य है। वात्सल्य का मूल्य इसी दृश्य में है।

धन त्रयोदशी (धन्वंतरि-जयन्ती)

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को भगवान् विष्णु के ही अंशावतार माने जाने वाले, आयुर्वेद के प्रख्यात ज्योतिर्धर भगवान् धन्वंतरि का जन्मोत्सव मनाया जाता है।

जीवधारियों को सम्पूर्ण जीवन में निरोग एवं निरामय रखने के शिव-संकल्प से जिन्होंने अपने आयुर्वेद शास्त्र का प्रकाश किया उन भगवान् धन्वंतरि का आज के दिन पूजन किया जाता है।

हमारा मूल वेद है। वेद का तात्पर्य पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि में है, परम तात्पर्य ब्रह्म या मोक्ष की सिद्धि है। मोक्ष सिद्धि कर सके, इसी के लिये धर्म का प्रतिपादन हुआ है। और धर्म को सिद्ध करना आवश्यक है क्योंकि यही चारों पुरुषार्थों की सिद्धि का साधन है। शरीर खलु धर्म साधन है। आयुर्वेद नाम से ही स्पष्ट है यह वेद का अंश है जो विषय वेद में अवशिष्ट रह गए उन्हें उपवेद में समाविष्ट किया गया। आयुर्वेद वेद का हिस्सा है।

अब हम अस्वस्थ कब होते है जब हम जाने-अजाने प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते हैं। और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कब होता है जब मन-बुद्धि में विकृति आती है। मन में विकृति का नाम आधि है शरीर में विकृति का नाम व्याधि है। आधि का ही परिणाम व्याधि है।

हमारे यहाँ प्रत्येक क्षेत्र में समग्रता का चिन्तन चलता है जबकि पश्चिम में सर्वत्र खण्डशः विचार ही होता है। वहाँ स्वास्थ्य के संदर्भ में केवल शरीर का ही विचार करती है हमारे यहाँ उसके मूल मन-बुद्धि पर भी विचार किया गया है आयुर्वेद का स्पष्ट लक्ष्य हम अपने सर्वोच्च लक्ष्य ब्रह्म को प्राप्त कर सके इसके लिए शरीर स्वस्थ रहना चाहिए। शरीर स्वस्थ रहे इसके मन एवं बुद्धि की दिशा सही होने चाहिए। उसे अपने लक्ष्य का स्प्ट बोध होना चाहिए। ब्रह्म प्राप्ति का अर्थ सत-चित आनन्द की प्राप्ति है पूर्णता की प्राप्ति से है। इसके लिए शरीर स्वस्थ मन पुष्ट, बुद्धि संतुष्ट, चित व अहम निर्मल एवं आत्मा संपुष्ट होना चाहिए।

पश्चिम शरीर के तो पुष्ट है
पर मन के दुष्ट
बुद्धि के बेइमान
चित्त के चंचल
एवं आत्मा के अंधे है

अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति इसका विचार ही नहीं करती इसलिए शरीर के एक रोग ठीक होते है तो दूसरे-तीसरे रोग उत्पन्न होते रहते हैं। पर आयुर्वेद शरीर के साथ-साथ मन बुद्धि, चित्त का ही विचार करती है फलतः हमें प्राकृत अर्थ में स्वस्थ करती है। स्वस्थ का अर्थ ही होता है स्व में आत्मा में स्थित होना।

हित मित रित भुक से शरीर स्वस्थ रहता है अच्छे संस्कारों के देने से मन स्वस्थ रहता है अच्छे विचारों को देने से बुद्धि स्वस्थ रहती है। मन-बुद्धि के

स्वस्थ रहने से चित, व अहम निर्मल रहता है तब हमारे जीवन में स्वाभाविक आनन्द जो हमारा मूल स्वरूप है उसमें हम स्थित रहते हैं।

नरक चतुर्दशी

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी पर्व मनाया जाता है। आज से 5100 वर्ष पूर्व द्वापर युग में इसी दिन भगवान् कृष्ण ने प्राग्ज्योतिषपुर (गुवाहाटी) के अत्याचारी राजा नरकासुर का संहार करके उसकी कैद में पड़ी हुई 16,000 भारतीय ललनाओं को मुक्त किया। समाज के अन्य लोगों द्वारा तिरस्कृत होने के कारण जब वे ललनाएं कहीं की भी न रहीं तो भगवान् ने उन्हें रानी का मान देकर अपने रनिवास में आदर का स्थान दिया तथा समाज के रूढ़िवादी लोगों के सम्मुख आत्मत्याग का महान् आदर्श रखा। नरकासुर के वध के पश्चात् द्वारका लौटने पर लोगों ने दीपमालिका से भगवान् श्रीकृष्ण का अभिनन्दन किया।

हनुमान् जयन्ती

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को ही अनेक लोग हनुमान जयन्ती भी मनाते हैं। कुछ अन्य शास्त्रों के मतानुसार हनुमान जयन्ती चैत्र पूर्णिमा को पड़ती है। वैसे हनुमान जी जैसे ब्रह्मचारी, वीरप्रवर, स्वामीभक्त सेवकों के पावन स्मरण के लिए प्रत्येक दिन ही पवित्र है। उन वज्र के समान अंगों वाले बजरंगबली के अनेकानेक गुणों पर विचार कर उन्हें आत्मसात् करने के लिए यह सुन्दर अवसर है।

लक्ष्मी जयन्ती

कार्तिक अमावस्या का पर्व तो लक्ष्मी पूजा का पर्व है। यह समुद्र मंथन से लक्ष्मी के उदय का पर्व माना जाता है। समुद्र-मंथन का लाक्षणिक अर्थ बड़ा गम्भीर है। परिश्रम से ही भाग्य-लक्ष्मी प्रकट होती है। 'कराग्रे वसते लक्ष्मी' अर्थात् मनुष्य के हाथों में (पुरुषार्थ में ही) लक्ष्मी का निवास है। मनुष्य के मन में भी दैवी सम्पद और आसुरी सम्पद का समुद्र मंथन चलता रहता है। उसी में से 14 रत्न निकलते हैं। विष को देख कर जो घबरा जाते हैं वे अमृत को नहीं पा सकते। धैर्य रखने वाले लक्ष्मी के दर्शन भी प्राप्त करते हैं तथा अमृतत्व लाभ भी करते हैं। योगीराज अरविन्द घोष ने एक लघुकथा में कहा है—'लक्ष्मी जब धरती पर उतरी तो धरती ने कहा—तू धरती पर पग मत रखना। स्वर्ग के देवों को अपना वरदान दे-देकर तूने उन्हें आलसी बना दिया है। मेरे बेटे अपने पुरुषार्थ की कमाई खायेंगे। निकम्मे बैठकर तेरा मुँह नहीं ताकेंगे। लक्ष्मी ने कहा—हे धरती बहन! तू अपने बेटों की आप सँभाल रख लेना। मैं तो अवश्य आऊँगी। यह कह कर लक्ष्मी धरती पर उतर आई और, आज धरती फूट-फूट कर रोती है, क्योंकि धरासुत लक्ष्मी से ही मांगते हैं, अपने पुरुषार्थ का नहीं कमाते।

लक्ष्मी के दो वाहन हैं। कुलक्ष्मी रूप से वह उलूकवाहिनी है अतः चाँदी-सोने के ढेर को ही लक्ष्मी समझ कर सिर पर ढोने वाले को दिन के प्रकाश में भी सत्यरूपी सूर्य के दर्शन नहीं होते। सुलक्ष्मी रूप में वही कमला, कमलासना है, पद्मसम्भवा है। सच्ची चारित्र्य-लक्ष्मी के उपासक संसार में रहते हुए भी कमल के समान निर्लिप्त रहते हैं। जहाँ सच्ची लक्ष्मी है, वहीं लक्ष्मीनारायण भगवान् हैं।

कालिका शोध शान्ति

कालिका पुराण के अनुसार महाकाली जब असुरों का संहार कर चुकीं तो क्रोधावेश में प्राणीमात्र का भी संहार करने लगी। उसे रोकना किसी के वश की बात नहीं थी। अतः भगवान् शंकर स्वयं महाकाली के सामने मार्ग रोक कर खड़े हो गये। आवेश में महाकाली स्वयं शंकर के वक्षस्थल पर चढ़ गयीं, किन्तु शिव के तपोःपूत शरीर का स्पर्श करते ही उनका क्रोध शान्त हो गया। इसी उपलक्ष्य में दीपोत्सव मनाया जाने लगा।

भगवान् वामन का विजय-पर्व

प्राचीन काल में असुरों ने (जो संभवतः असीरीया देश के निवासी थे) बार-बार आक्रमण किये। भारत के सोने (हिरण्य) पर नजर रखने वाले हिरण्याक्ष ने हमला किया ते भारतीय जनगण ने जंगली सूअर (वराह) के समान आवेश में आकर उसे वाराहमूल (बारामूला, काश्मीर) में मार दिया। उसके भाई हिरण्यकशिपु ने मूलत्राण (मुल्तान) में अपना राज्य जमा लिया। उसके भारत भक्त पुत्र प्रह्लाद का साथ देकर जनगण ने नृसिंह शक्ति के रूप में जागृत हो उसे विदीर्ण कर डाला। उसके पुत्र प्रह्लाद को जनगण ने आदर का स्थान दिया। तत्पश्चात् विरोचन तथा उसके पुत्र बलि का राज्य आया। प्रह्लाद के पौत्र बलि का राज्य सुराज्य तो था किन्तु स्वराज्य नहीं था। शिक्षा में ब्राह्मणों के स्थान पर विरोचन की चलाई हुई पद्धति का मान था। व्यापार असुरों के हाथ था, सेना में भी भारतीयों को योग्य स्थान नहीं मिलता था। बलि ने भारत की भाग्यलक्ष्मी को बन्दी बना लिया था। अतः नर नारायण ने (कुशाग्रबुद्धि ब्राह्मण) का रूप धारणकर बलि को छल से पातालवासी बनाकर भारत की भाग्यलक्ष्मी को मुक्त किया। इसी उपलक्ष्य में, जहाँ भारतीय जनगण के हृदय के आशादीप जगमगा उठे वहाँ प्रकट दीपों द्वारा भी दीपावली का पर्व मनाकर हर्ष व्यक्त किया गया।

भगवान् राम के अभिनन्दन में दीपोत्सव

प्रचलित परम्परा के अनुसार भगवान् श्रीरामचन्द्र के लंका विजयोपरांत अयोध्या वापस लौटने पर कोटि-कोटि हर्ष मुकुलित हृदयों ने दीवाली द्वारा उनका

अभिनन्दन किया। वाल्मीकि रामायण इस विषय में मौन है किन्तु तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस में इसका सविस्तार वर्णन है। प्रभु रामचन्द्र के अयोध्या लौटने का समय कोई भी रहा हो, इस महान् राष्ट्रीय विजय पर प्रकाशित हर्ष को दीपावली के साथ संयुक्त करके भारतीयों ने दीपमालिका का गौरव भी बढ़ा दिया है। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण की नरकासुर पर विजय के साथ भी इस आलोक पर्व का अविच्छिन्न संबंध हो गया।

विक्रमादित्य का विजय-पर्व

प्रचलित गाथाओं के अनुसार विक्रम संवत् के प्रणेता वीरवर विक्रमादित्य ने आततायी शकों पर विजय प्राप्त करके आज के दिन दीपमालिका के आनन्दोत्सव को मनाया। कोई सम्राट् अशोक का विजय दिवस भी इसे मानते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान में ज्योतिपर्व

ज्योतिष में भी इस पर्व का बड़ा महत्त्व है। सूर्य तुला राशि में चला जाता है, तुला का संबंध व्यापार से होने के कारण यह व्यापारियों का एक महान् पर्व है। कार्तिक अमावस्या वर्ष की सबसे अधिक अंधकारमयी रात्रि है। इसे सबसे अधिक प्रकाशमान बना देने के मानवीय उपक्रम का नाम ही दीवाली है। शारदीय नवशस्येष्ठी यज्ञ भी किया जाता है। यज्ञाग्नि में नवान्न को भेंट करके ग्रहण किया जाता है। दीपों के जलाने से तथा यज्ञाग्नि से अनेक रोगाणुओं का नाश होता है।

भगवान् महावीर निर्वाण दिवस

जीव दया के मूर्तिमान अवतार भगवान् महावीर का महानिर्वाण भी इसी ज्योति-पर्व पर हुआ। अतः जीवन में तप एवं सर्वभूत दया का व्रत लेकर ही इन्हें (महावीर स्वामी को) उचित सम्मान दिया जा सकता है।

गुरु हरगोविन्द मुक्ति दिवस

मध्यकालीन मुगलों ने जो भारतीय धर्म पर अनेकानेक अत्याचार किये, उसी परम्परा में गुरु अर्जुन देव को तप्त लोहे के तवों पर जलाने के पश्चात् जहाँगीर ने उनके सुपुत्र छठे गुरु हरगोविन्द जी को ग्वालियर के किले में बन्दी बना लिया। बाद में जब उनकी मुक्ति का आदेश हुआ तो कहा गया कि जितने व्यक्ति उनके चोगे को पकड़ लेवें वे भी मुक्त कर दिये जाय। गुरु महाराज ने 52 कलियों वाला चोगा बनवाया तथा उनकी एक-एक कली को पकड़ कर 52 अन्य राजा जो किले में बंदी थे वे भी मुक्त कर दिये गये। इसी उपलक्ष्य में अमृतसर के स्वर्णमंदिर में आज के दिन दीपावली मनाई गई थी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती निर्वाण दिवस

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द को उनके निजी रसोइए ने विष दे दिया किन्तु स्वामीजी ने उसे अपने पास से धन देकर भाग जाने का संकेत दिया। स्वामीजी ने कहा—'मैं लोगों को बन्धन से मुक्त कराने के लिए आया हूँ, बंधवाने के लिए नहीं।' आज दीपावली के पर्व पर जब कोटि-कोटि दीपक जल उठे, स्वामीजी का दीप निर्वाण हो गया। उनके मुख पर अन्तिम शब्द थे—'हे प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो।'

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर निर्वाण दिवस

बंगाल के लोकप्रख्यात, विद्यामार्तण्ड श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का निर्वाण भी इसी प्रकाशमान पर्व पर हुआ। भारत के युवकों को उनके जीवन से विद्या का अनुराग, अध्यवसाय, मातृभक्ति एवं सच्चरित्रता—जैसे सद्गुणों को ग्रहण कर उन्हें भावांजलि चढ़ानी चाहिए।

स्वामी रामतीर्थ जयन्ती

स्वामी रामतीर्थ की जीवन-गीतिका की दृष्टि से दीपमालिका का पावन पर्व वह त्रिविध धन्य दिवस है जब वह महान् विभूति इस धरती पर अवतीर्ण हुई, जब वह ब्रह्मज्योति से मिलने के लिए परम व्याकुल हुई तथा जब ब्रह्मलीन हो गयी। सन् 1906 की दीपमालिका पर जल समाधि लेने से पूर्व उन अलौकिक तत्त्वदर्शी ने जो मृत्यु को चुनौती दी है वह उनके शाश्वत-गौरव की परिचायक है।

गोवर्धन पूजा

दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा का पर्व होता है। व्रज के मन्दिरों में जहाँ अन्नकूट होता है वहाँ गो जाति के वर्द्धन के कारण गोवर्धन पर्वत की भी पूजा की जाती है।

बलि पूजन

उसी दिन राजा बलि का पूजन भी होता है।

चित्रगुप्त पूजा

यमराज के 18 यमों में एक यम चित्रगुप्त हैं। वे मनुष्यों के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखते हैं। वे कायस्थ जाति के आदिपुरुष माने जाते हैं। उनकी पूजा का प्रचलन भी पुराना है।

यम द्वितीया

यह भैया दूज का पवित्र पर्व कार्तिक शुक्ला द्वितीया को आता है इस दिन यम ने अपनी बहिन यमुना द्वारा तिलक करवाया था। आज बहिनें भाइयों को

विजय-तिलक करती हैं। इसके अगले दिन भगिनी तृतीया (यमुना तृतीया) का पर्व आता है। इस दिन भाई बहिन की पूजा करता है।

इस प्रकार अनेकानेक पर्वरूपी दीपकों से जगमगाता हुआ दीपमालिका का पर्व एक अद्‌भुत पर्व-मालिका ही है। सभी पर्वों को प्रकाशित करने वाले दीपक के उस आलोक मधुर प्रकाश को हमारे प्रकाश-पिपासु प्राणों का प्रणाम!

आज दीपावली को मानव मात्र के मंगल, सुख, शांति, समृद्धि असत् पर सत् की विजय का, अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला, मृत्यु से अमृत की ओर ले जाने वाला उत्सव मानकर विश्वस्तर पर मान्यता मिल रही है। आज विश्व की अनेक संसदों में जिसमें ब्रिटेन-अमरीका के संसद भवन भी दीपमाला से जगमगा रहे हैं।

विज्ञान में की गयी प्रगति जिसे सामान्यतः यूरोप के लोगों द्वारा प्रतिपादित समझा जाता है, वास्तव में वे शताब्दियों पहले भारत में ही विकसित हुईं।

—ब्रिटिश इतिहासकार ग्रांट डफ

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं श्रुत्वाचैवाव धार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

धर्म का सार-सर्वस्व सुनो और सुन कर उसे अपनाओ, दूसरों द्वारा किया हुआ जो व्यवहार स्वयं को प्रतिकूल लगे वैसा व्यवहार स्वयं दूसरों के प्रति न करो।

× × ×

पाश्चात्य देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं जिन बातों को हृदय के आवेग से सत्य मान लेता था। अब उन्हें प्रत्यक्ष सत्य के रूप में देख चुका हूं। पहले मैं अन्य हिन्दुओं की तरह विश्वास करता था कि भारत पुण्यभूमि है कर्मभूमि है किन्तु आज मैं यह दृढ़ता के साथ कहता हूं कि यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा स्थान है जहां मानव जाति के हृदय में क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्‌वृत्तियों का सर्वापेक्षा अधिक विकास हुआ है तो वह हमारी मातृभूमि भारतवर्ष है। विदेशों में लाखों स्त्री-पुरुषों के हृदय में जड़वाद की जो अग्नि धधक रही है उसे बुझाने के लिए जिस अमृतधारा की आवश्यकता है वह भारत में ही विद्यमान है।

—स्वामी विवेकानन्द

रथ यात्रा : जगती के आंगन में भारतीय संस्कृति के महारथ के अमिट पद-चिह्न

श्री पुरीधाम विश्वभर में भ्रातृप्रेम का एकमात्र एवं अद्वितीय तीर्थधाम है। जहाँ अन्य तीर्थों में भगवान् श्रीकृष्ण, श्री राधिका अथवा रुक्मिणी के संग शोभायमान हैं, वहाँ पुरीधाम में वे अपने भाई बलभद्र एवं बहिन सुभद्रा के साथ विश्वभर को बंधुभाव का संदेश देते हुए विराजते हैं। हिन्दू समाज में जब तक भाई-बहिन के संबंधों की पवित्रता रहेगी तब तक हिन्दू समाज अमर रहेगा। पुरीधाम, समाज के सभी वर्गों में बंधुभाव की सत्प्रेरणा दे रहा है। वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र एवं नगरवासी, ग्रामवासी व वनवासी सभी एकात्म हो जाते हैं।

सुभद्रा मंगलम्

इस बंधुभाव के तीर्थ का रहस्य क्या है? भगवान् श्रीकृष्ण अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह भक्तराज अर्जुन से करना चाहते थे। अर्जुन एवं सुभद्रा—दोनों की परस्पर सहमति भी थी। किन्तु बलराम नहीं मानते थे। वे सुभद्रा का विवाह अपने गदायुद्ध के शिष्य दुर्योधन से करना चाहते थे। उनका तर्क था कि वे अपनी बहिन को राजघराने में देंगे, वनवासी पाण्डवों को नहीं। भगवान् कृष्ण का तर्क था कि दुर्योधन राजा अवश्य है पर पापी है, पाण्डव अर्जुन निर्धन वनवासी अवश्य है पर धर्मात्मा है। बलराम जी के इस विचार को सुभद्रा प्राणों के मूल्य पर भी स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। अर्जुन द्वारा भगवान् कृष्ण एवं सुभद्रा—दोनों की सहमति से सुभद्रा को विवाहार्थ ले जाने पर बलरामजी ने अर्जुन का पीछा किया। भगवान् श्रीकृष्ण के बहुत समझाने पर बड़ी कठिनाई से बलरामजी स्वेच्छा से सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करने को प्रस्तुत हुए। भगवान् कृष्ण ने श्रीबलराम को समझाया कि हम यदुवंशी होने से अपने पूर्वज राजा ययाति द्वारा राज्यशासन से वंचित होने के कारण कनिष्ठ क्षत्रिय बन गये हैं, किन्तु अर्जुन पुरुवंशी होने के कारण श्रेष्ठ क्षत्रिय है। वह वीर शिरोमणि भी है, यदि आप परास्त हो गये तो भी मेरे सम्मान को धक्का लगेगा कि मेरा बड़ा भाई मेरे शिष्य द्वारा परास्त हो गया है। यदि अर्जुन पर संकट आ गया तो मुझे अपनी भक्त वत्सलता के कारण अर्जुन की रक्षा हेतु युद्ध

में उतरना पड़ेगा तथा इस प्रकार दोनों भाइयों में युद्ध ठन जायगा। वह शोभन नहीं है। अतः विवेक की बात यही होगी कि हम दोनों भाई सम्मान पूर्वक दोनों कुलों की मान मर्यादा बचाते हुए स्वयं ही अपनी बहिन को रथ पर बिठाकर अर्जुन के यहाँ पहुँचा देवें। तब आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को जब भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलभद्र अपनी प्यारी बहिन को रथ में बिठाकर अर्जुन के घर कन्यादान हेतु ले जा रहे थे तब सुभद्रा ने पुलकित होकर भगवान् से प्रार्थना की कि वह दृश्य अमर हो जावे—'हे भगवान! आप राधा, रुक्मिणी या लक्ष्मी के साथ अनेक तीर्थों में प्रतिष्ठित हैं। एक भाई-बहिन के प्रेम का तीर्थ भी होना चाहिए।' भगवान् ने कहा—'पुरीधाम में हम बहिन-भाइयों के प्रेम का अमर तीर्थ प्रतिष्ठित होगा तथा आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को हम बहिन-भाइयों के रथ-गमन की स्मृति में रथयात्रा महोत्सव होगा।'

भगवान् के दारु विग्रह का रहस्य

राजा चित्ररथ गंधर्व ने भरी सभा में अनेक ऋषि-मुनियों को नमस्कार करके भी गालव ऋषि को नमस्कार नहीं किया। भगवान् कृष्ण के पास गालव ऋषि की शिकायत पहुँचने पर उन्होंने कह दिया कि यदि आज संध्या तक राजा चित्ररथ ऋषि-चरणों में स्वतः शीर्ष नहीं झुकाएगा तो उसका शीर्ष-छेदन कर दिया जाएगा। नारदजी के परामर्श पर वह राजा अर्जुन की शरण में गया। अर्जुन ने उसे अभयदान दे दिया—'भय मत करो।' श्रीकृष्ण एवं अर्जुन—दोनों के वचनबद्ध होने के कारण बड़ा रोमांचक कृष्णार्जुन युद्ध हुआ। अर्जुन श्रीकृष्ण-भक्ति के बल पर ही भगवान् के सब वारों को काटता जाता था। संध्या होते ही भगवान् ने हथियार फेंक दिये तथा कहा—'आज मैं हार गया, मेरा भक्त जीत गया। मैं हस्तविहीन काष्ठ हो गया। कलियुग में मेरे दारु-विग्रह की ही पूजा होगी।'

बौद्धकाल में बौद्ध प्रभाव बढ़ जाने के कारण पुरीधाम में बुद्ध, तारा एवं कालभैरव की मूर्तियों की रथ-यात्रा चलने लगी थी। भगवान् शंकराचार्य ने ही इस धाम का पुनरुद्धार किया तथा पुनः श्रीकृष्ण, बलभद्र एवं सुभद्रा की मूर्तियों की रथयात्रा की परम्परा प्रारंभ की थी। पुरीधाम में ही उन्होंने सनातन धर्म के पुनरोदय का संकल्प किया तथा श्रीगोवर्धनमठ की स्थापना की। वहाँ से उन्होंने हिन्दूधर्म के पुनरुत्थान के महाभियान का शुभारम्भ किया।

चार युगों के चार धाम

धर्मप्राण भारत देश के पावन तीर्थों की रचना इस प्रकार की गयी है कि भारत दर्शन के साथ-साथ स्वतः ही भगवान् का दर्शन हो जाय। इसी प्रकार धार्मिक तीर्थाटन के बहाने देश दर्शन भी होकर देश की एकता एवं अखण्डता का पावन संस्कार मानव मन में अमिट रूप से अंकित हो जाता है। देश और धर्म की

ऐसी एकता संसार के किसी भी अन्य देशों में ऐसे सुन्दर रूप में प्रतिफलित नहीं हुई है। देश के चारों कोनों में स्थित चार धाम अनादि काल से देश की एकता एवं अखण्डता के प्राणवान प्रहरी के समान खड़े हैं। उत्तर में तुषारमण्डित हिमशिखरों में सतयुग का धाम बद्रिकाश्रम है जहाँ सतयुग में नारदजी को नर-नारायण के दर्शन होते थे। दक्षिण में त्रेता का धाम रामेश्वरम् है जहाँ भगवान् राम ने लंका-विजय हेतु पुल बांधा। द्वापर का धाम द्वारका है जिसे द्वापर युग में भगवान् श्रीकृष्ण ने देश को पश्चिमी आक्रमणों से बचाने हेतु बसाया। कलियुग का धाम पुरी है। जहाँ भगवान् कृष्ण दारु विग्रह में विराजते हैं, जहाँ शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का शंख बजाया, जहाँ गौरांग कृष्ण श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु कीर्तन गाते-गाते भगवान् जगन्नाथ के विग्रह में ही समा गये, जहाँ गुरुनानक, रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, अरविन्द, स्वामी प्रणवानन्द प्रभृति अनेकानेक संत-महात्मा, ऋषि-मुनि कलिकाल के धर्म की जागृति का संदेश देते रहे।

पुरीधाम को पुरुषोत्तम तीर्थ भी कहा जाता है। ब्रह्म पुराण में इस संबंध में 800 श्लोक मिलते हैं। मालवा (उज्जैन) के राजा इन्द्रद्युम्न इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं। वह इस क्षेत्र की यात्रा पर अपनी सेना, विद्वत्मंडली एवं कृषक मण्डली सहित आकर बसा।

पुरी के दक्षिणी समुद्रतट पर एक वट-वृक्ष था, जिसके समीप पुरुषोत्तम की नीलमणि की मूर्ति बनी हुई थी। कालक्रम से वह बालुका से ढक गई और उसी में निमग्न हो गयी। इन्द्रद्युम्न ने वहाँ एक अश्वमेध यज्ञ करके एक बहुत बड़े मन्दिर का निर्माण करवाया। वह मूर्ति की खोज में था। स्वप्न के संकेतानुसार राजा ने एक वृक्ष को काटकर विश्वकर्मा (कलाकार) से तीन मूर्तियाँ बनवायीं तथा उन्हें स्थापित किया। इन्द्रद्युम्न के यज्ञ-स्नान के स्थान पर स्नान का बड़ा महत्त्व माना जाता है। इसे नीलांचल क्षेत्र भी कहा जाता है। आजकल इस विशाल मन्दिर में 120 देव-मन्दिर हैं, 13 शिव के, कुछ पार्वती के तथा एक मन्दिर सूर्य का है। जगन्नाथ मन्दिर समुद्रतट से 20 फुट ऊँचा एक छोटी-सी गोल पहाड़ी पर स्थित है जिसे नीलगिरि कहा जाता है। मन्दिर का शिखर 192 फुट ऊँचा तथा चक्रध्वज से मंडित है। मन्दिर के 4 खण्ड हैं—1. भोग मन्दिर (भगवान् के भोग लगाने का स्थान), 2. रंग मन्दिर (नृत्य-गान का स्थान), 3. सभामण्डप (तीर्थयात्रियों के बैठने का स्थान), 4. अन्तराल (गर्भगृह, श्रीजगन्नाथजी का सिंहासन)।

जगन्नाथजी का रथ 45 फुट ऊँचा, 35 वर्गफुट क्षेत्रफल का तथा 7 फुट व्यास के 16 पहियों से युक्त रहता है। उसमें 16 छिद्र रहते हैं और गरुड कलंगी लगी रहती है। सुभद्रा का रथ 12 पहियों से युक्त तथा पद्म-शिखर वाला होता है। बलराम का रथ 14 पहियों से युक्त तथा हनुमान् मुकुट से सुशोभित रहता है।

वनवासियों का श्रद्धा-तीर्थ

पुरीधाम वनवासी जनजाति बहुल क्षेत्र है। जिस प्रकार मिर्जापुर की विन्ध्यवासिनी, गुवाहाटी की कामाख्या तथा तिरुपति के बालाजी मूलतः वनवासियों के तीर्थ रहे हैं उसी प्रकार पुरीधाम भी मूलतः वनवासी श्रद्धा-तीर्थ था। वहाँ की अनगढ़ी, अधूरी मूर्तियाँ वनवासियों की अर्धविकसित मूर्तिकला की छवियाँ हैं। पुरी के वनवासी राजा ही भगवान् के विग्रह को स्पर्श करने के अधिकारी हैं। वे ही भगवान् की मूर्तियों को गर्भगृह से उठाकर रथों में पधराते हैं तथा रथ चलने से पूर्व वे ही अपने हाथ से सोने-चाँदी की सीकोंवाला झाड़ू लेकर पथ को बुहारते हैं तब रथ चलता है।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु का जगन्नाथ महाप्रभु में लय

चैतन्य महाप्रभु को नीलांचल तीर्थ जगन्नाथपुरी बहुत प्रिय था। उन्होंने भगवान् जगन्नाथजी की स्तुति में जगन्नाथष्टक स्तोत्र गाते हुए मानो अपना हृदय ही उड़ेल दिया।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु आषाढ़ शुक्ला द्वितीया, विक्रम संवत् 1590 को रथ-यात्रा के पुनीत दिवस पर पुरीधाम में श्री जगन्नाथ स्वामी की स्तुति गाते हुए भगवान् के विग्रह का आलिंगन कर उन्हीं में लीन हो गए। व्यक्ति का चैतन्य जब महाप्रभु में लय हो जाता है तब चैतन्य स्वयं ही महाप्रभु बन जाता है।

गुरुनानक द्वारा जगन्नाथ महाप्रभु की अलौकिक आरती

गुरुनानक देव अपनी पूर्वी दिशा की यात्रा में जगन्नाथपुरी पहुँचे। उनके साथ उनके दो शिष्य बाला (हिन्दू) एवं मरदाना (मुसलमान) थे। पुरी के पण्डों ने गुरुजी एवं बाला को मन्दिर के भीतर जाने के लिए निमन्त्रित किया किन्तु मरदाना के प्रवेश पर (जन्म का मुसलमान होने के कारण) आपत्ति की। गुरु महाराज ने मन्दिर के द्वार पर ही जगत् के नाथ की जगद्व्यापी आरती-वन्दना की—

गगनमय थाल, रवि-चंद दीपक बने,
तारका मंडला जनक मोती।
धूप मलयानलौं, पवन चंबरौ करे,
सगल बनराय फूलन्त जोती।
कैसी आरती होई भवखण्डना, तेरी आरती,
अनहदा शब्द बाजंत भेरी।।
सहस तव नैन, ननु नैन है तोहिको,
सहस मूरत बना एक तोही।

सहस पद विमल, ननु एक पद, गंध बिन,
सहस तव गंध इव चलत मोही।।
सब मैं जोत जोत है सोई,
तिनके चानण सब जग चानण होई।
गुरु साखी जोत प्रगट होई,
जो तिस भावे सो आरती होई।।
हरि चरण कम मकरन्द लोभित मनु
अनु दिनो मोही आहि पियासा।
किरपा जल के दे नानक सारंग कउ,
होई जाते तेरे नाम वासा।।

अर्थात् 'हे जगन्नाथ महाप्रभु! आपकी विराट् आरती के निमित्त आकाशरूपी थाल में सूर्य एवं चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और असंख्य तारे इस थाल में जड़े हुए मोती हैं। मलय चंदन की सुगन्धि तुम्हारी आरती की धूप है, वायु चंवर कर रहा है। हे ज्योति स्वरूप! वनों के सारे पुष्प आपकी पूजा हेतु खिले हैं। हे भवखण्डन! तुम्हारी आरती सीमित कैसे हो सकती है, अनहद शब्द आरती में नगाड़े के रूप में बज रहा है। हरि के चरण-कमलों में मेरा मन-भ्रमर सदैव बना रहता है। मुझे तुम्हारे प्रेम मकरन्द की प्यास बनी रहती है। हे प्रभु! मुझ पपीहे को अपनी कृपा का जल दो, जिससे तुम्हारे नाम में मेरा निवास हो।'

आज दुर्भाग्य की बात है कि कुछ उग्रवादी अकाली सिक्ख नेता इस सारी दिव्य सांस्कृतिक परम्परा का तिरस्कार कर हिन्दू समाज से कटकर भारत से अलग खालिस्तान का आंदोलन चला रहे हैं।

महाराजा रणजीत सिंह द्वारा जगन्नाथजी को कोहेनूर हीरा समर्पण

पंजाब के सुविख्यात महाराजा रणजीत सिंह ने अपना शरीर छोड़ते समय अपनी वसीयत में अपना सबसे प्रिय एवं सर्वाधिक मूल्यवान कोहेनूर हीरा भगवान् जगन्नाथजी के चरणों में समर्पित कर दिया था। किन्तु महाराजा की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने मंत्रीगण को बहकाकर यह आपत्ति करवा दी कि हीरा राज्य की सम्पत्ति थी, न कि महाराजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति। अतः महाराजा को हीरा दान का अधिकार ही न था। इस प्रकार अंग्रेज उस हीरे को ठगकर इंग्लैण्ड ले गये।

चाहे अंग्रेज लुटेरे जगन्नाथजी का हीरा लूट ले गये किन्तु महाराजा रणजीत सिंह का दान सदा अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने काशी-विश्वनाथ मन्दिर के लिए भी 21 मन सोने का दान किया था।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा जगन्नाथजी की आरती

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ जब पुरीधाम गये तो उन्हें गुरुनानक देव द्वारा विरचित विराट् आरती से इतनी प्रेरणा मिली कि उन्होंने उस आरती का लगभग पद्यानुवाद अपने एक बांग्ला गीत में गाकर जगन्नाथजी का वाक्-पुष्प-पूजन किया—

ताहारे आरती करे चन्द्र तपन,
देव मानव बन्दे चरण,
आसीन सेइ विश्व शरण,
तार जगत-मन्दिरे।। ताहारे....
अनादिकाल अनन्त गगन,
सेइ असीस महिमा मगन,
ताहे तरंग उठे सघन,
आनन्द-नंद नन्दरे।। ताहारे....
हाते लये छय ऋतुर डालि,
पाये देय धरा कुसुम ढालि,
कतई बरन, कतई गंध, कत गीत,
कत छन्द रे। ताहारे....
विहग गीत गगन छाय,
जलद गाय, जलधि गाय,
महापवन हरषे धाय,
माहे गिरिकन्दरे।। ताहारे....
कतकत शत भक्त प्राण,
हेरिछे पुलके गाहिछे गान,
पुण्य किरणे फुटिछे प्रेम,
टूटिछे मोह बंध रे। ताहारे....

धुर्वा का जगन्नाथ मन्दिर

हुतात्मा ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव के पूर्वज छोटानागपुर के नागवंशी राजकुल के राजा ठाकुर ऐनीनाथ शाहदेव की धुर्वा, राँची में राजधानी थी। वे पुरी तीर्थ की यात्रा पर गये थे। वे अपने साथ सुकरा उरांव नामक एक सेवक को भी लेते गये थे। राजा प्रतिदिन देव दर्शन एवं सत्संग हेतु चले जाते तथा श्री उरांव को भोजन-रसोई पकाने हेतु पीछे डेरे पर छोड़ जाते। श्री उरांव ने एक सप्ताह तक निराहार रहकर भगवान् जगन्नाथजी की आराधना की। भगवान् ने रात्रिकाल में उसे दर्शन

देकर अपने हाथों से सोने के कटोरे में उसे खीर खिलाई। प्रातःकाल मन्दिर के पट खुलने पर देखा गया कि भगवान् का सोने का कटोरा लुप्त हो गया है। राजा ने यह समाचार जब सुकरा उरांव को सुनाया तो उसने बताया कि रात्रि को जगन्नाथजी ने उसे सोने के कटोरे में खीर खिलाई थी और वह कटोरा उसने पीछे बाड़ी में फेंक दिया था। कटोरा बाड़ी में मिल जाने पर राजा एवं पण्डा लोगों ने उसे पहचान लिया। सभी ने आनन्द विस्मित होकर कहा—'हमने तो मात्र काष्ठ मूर्ति के दर्शन किए, सच्चे जगन्नाथजी का दर्शन तो आपको ही हुआ है।' भगवान् जगन्नाथ ने स्वप्न में राजा ऐनीनाथ शाहदेव को प्रेरणा दी कि राँची लौटने पर वह धुर्वा, बड़कागढ़ (जगन्नाथपुर) में श्री जगन्नाथजी का मन्दिर स्थापित करें ताकि निर्धन वनवासी वहीं पर रथ-यात्रा का दर्शन कर पुण्य लाभ कर सकें।

एक उरांव वनवासी सेवक की ईश्वर-भक्ति के चमत्कार से ही राजा ऐनीनाथ शाहदेव को मंदिर स्थापना की सत्प्रेरणा हुई, इसलिये जगन्नाथपुर मंदिर झारखंड के वनवासी बन्धुओं का भी सर्वोच्च महातीर्थ बन गया।

बिरसा भगवान् ने इसी मंदिर में श्री जगन्नाथ महाप्रभु के सामने स्वदेश एवं स्वधर्म की रक्षा हेतु पापी पादरियों से धर्म-युद्ध का संकल्प किया था और इसी हेतु अपने प्राण भी न्योछावर कर दिये।

विदेशों में रथ-यात्रा

जापान एवं कोरिया में अभी तक इसी आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन विशाल रथ-यात्रा निकलती है। बौद्ध देश होने के कारण रथ में बुद्ध, तारा एवं कालभैरव की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित होती हैं। भारत के समान ही लकड़ी के रथ, लकड़ी के चक्के, खींचने वाले भक्त, वर्षा की रिम-झिम। सभी कुछ पुरीधाम जैसा ही होता है।

थाई देश, कम्बुज, चम्पा आदि में भी प्राचीन काल से रथ-यात्रा की परम्परा चली आ रही है। मलेशिया, सिंगापुर की रथ-यात्रा में इसी दिन भगवान् कार्तिकेय (सुब्रह्मण्यम स्वामी, मुरूगन स्वामी) के बड़े भव्य रथ निकाले जाते हैं। यह परम्परा दक्षिण भारत से आयी है। जिस प्रकार भक्तजन जगन्नाथ स्वामी का रथ खींचने में अपने को कष्ट में डालने तथा स्वयं बलिदान तक हो जाने में गौरव मानते हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारतीय भक्त दक्षिण भारत में तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में बसे हुए कावड़ उठाते हैं। अपने शरीर के मुख, कंधे के भीतर से सूआ पिरोकर, उससे रस्सी बांध, देवता के रथ को खींचते हैं।

इंडोनेशिया का बाली द्वीप लगभग 100 प्रतिशत हिन्दू द्वीप है। वहाँ की रथ यात्रा में विष्णु (जगन्नाथजी) विराजते हैं तथा इंडोनेशिया के शेष द्वीपों में बुद्ध, तारा एवं कालभैरव की त्रिमूर्ति है।

अमरीका एवं पश्चिमी देशों में आज जो विराट् रथ-यात्रा महोत्सव मनाए जा रहे हैं, वे सब पूज्य श्री भक्तिवेदान्त स्वामीजी की तपस्या का ही सुफल है। श्री चैतन्य गोड़ीय मठ के भक्त डॉ. अभय चरण कोलकाता में डॉक्टर थे। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की इस वाणी को पढ़ा कि एक दिन सारे विश्व में श्रीकृष्ण नाम गूंजना चाहिए। वे संन्यास लेकर भक्तिवेदान्त स्वामी नाम धारणकर सन् 1966 में एक भगवद्गीता, एक करताल एवं आठ डालर की विदेशी मुद्रा लेकर अमरीका जा पहुँचे। उन्होंने एक अमरीकी के साथ रहकर गीता व्याख्यान एवं संकीर्तन प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे प्रभुपाद के दिव्य विचारों से अमरीका में ही 14,000 से अधिक अमरीकन घर-गृहस्थी त्याग कर, मांस-शराब त्यागकर, शिखा-सूत्र, तिलक धारणकर, 'हरे-कृष्ण आंदोलन' में जीवनदानी संन्यासी बन चुके हैं। दुनिया में 150 से अधिक श्रीकृष्ण मन्दिर स्थापित हो चुके हैं तथा अमरीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड के प्रत्येक बड़े नगर में विराट् एवं विशाल रथ-यात्रा महोत्सव हो रहे हैं।

अमरीका में न्यू वृन्दावन एवं नवीन पुरी नगर स्थापित हो चुके हैं तथा बोस्टन, लंदन, न्यूयॉर्क एवं बर्लिन की गलियों में कीर्तन गूंज रहा है। इस प्रकार जगती के आंगन में जगन्नाथ महाप्रभु की रथयात्रा के बहाने भारतीय संस्कृति की दिग्विजय के महारथ के चरण-चिह्न स्थापित हो रहे हैं।

मुझे फिक्र है कि हमारे देशवासी कल-कारखानों और मशीनी तकनीक से बलवान बनकर अपनी-अपनी दौलत और ऐश के फेर में पड़कर कहीं अपने ही को खो न बैठें। अगर ऐसा हुआ, तो यह बड़े दुःख की बात होगी, क्योंकि इसके माने ये होंगे कि भारत युगों से जिन आदर्शों पर चलता आया है, और इस जमाने में गांधीजी ने जिनकी मिसाल कायम की है, उन सबको भुला देगा। शक्ति जरूरी है, पर ज्ञान उससे भी ज्यादा जरूरी है। जिस शक्ति को ज्ञान का सहारा हो वही शक्ति अच्छी होती है।

—पंडित नेहरू